चन्दामामा

माँ-बच्चों का मासिक पत्र

पाप किसका है?

बहुत पहले कभी कौशिक नाम का एक ब्राह्मण रहा करता था। वह बहुत ही उत्तम प्रकृति का व्यक्ति था। वह हमेशा परमात्मा की भक्ति में डूबा रहता।

एक रोज कौशिक ने किसी पण्डित को भोजन के लिये न्योता दिया। पण्डित आने के लिये मान भी गया। कौशिक ने ग्वालिन को, जो उसके घर दूध दही दिया करती थी, बुला कर कहा-"अगर तू कल अच्छी जमी हुई दही लाई, तो ज्यादा पैसे दूँगा।"

अगले दिन सवेरे अच्छी दही से भरी एक हाँड़ी को टोकरी में रख वह ब्राह्मण के घर की ओर चली। जब वह जल्दी-जल्दी चलने लगी, तो टोकरी पर रखा कपड़ा हवा के कारण जरा हट गया।

उसी समय एक गिद्ध, पंजों में एक साँप को पकड़े हुये, आकाश में उड़ा जा रहा था। गिद्ध के पञ्जों में छटपटाते साँप ने दर्द के मारे विष उगला। वह विष सीधे ग्वालिन के सिर पर रखी टोकरी में, ऐन दही के हाँड़ी में गिरा।

ग्वालिन कौशिक के घर गई। उसको दही की हँड़िया दी और चली गई। कौशिक ने हाँड़ी को हिफाजत से घर में रखा।

भोजन का समय हो गया। निमन्त्रित पण्डित भी आ पहुँचा। पकवान अच्छे थे। पण्डित ने दबा कर खाया। आखिर में हँडिया में रखी दही को कौशिक ने खुशी खुशी

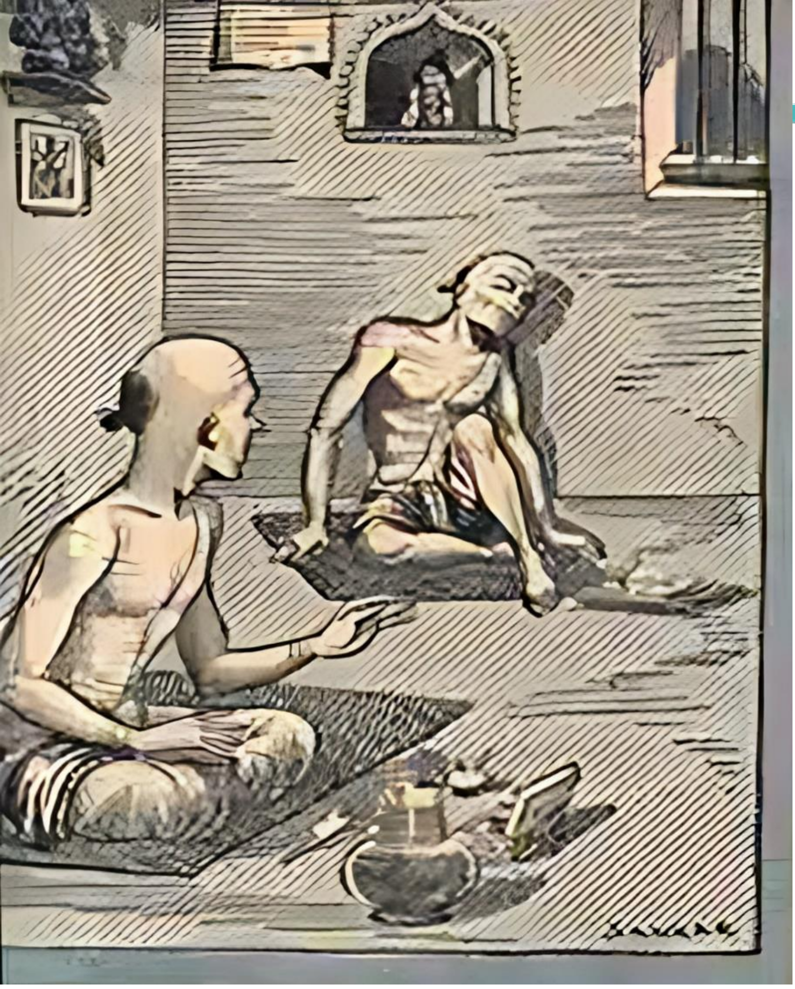

परोसा। पण्डित ने भी बड़े स्वाद से दही खाई।

मगर भोजन के कुछ देर बाद ही, यह ब्राह्मण छटपटाकर मर गया। यह किसी को भी न मालूम हो सका कि उसकी मृत्यु क्यों हो गई थी। उसको अचानक इस प्रकार मरा पा, कौशिक भी बहुत दुःखी हुआ। भूलोक में पण्डित के मरते ही नरक लोक में प्राणियों का हिसाब-किताब रखने वाले चित्रगुप्त के सामने नई समस्या पैदा हो गई। पण्डित को मारने का पाप किसको लगना चाहिये ? वह इस पेचीदे सवाल में उलझा पड़ा था।

"पण्डित को भोजन परोसने वाला ब्राह्मण था, इसलिये यह उसी का पाप है।" उसने सोचा। परन्तु उसका ख्याल एकदम बदल गया। उसने अच्छी दही इसीलिये मँगाई थी कि पण्डित को अच्छी दावत दी जाय। भला उसको क्या मालूम कि दही की हँडिया में विष था ! अगर यह मालूम होता तो वह पण्डित को ज़रूर न देता। ब्राह्मण सचमुच निर्दोषी है। उसे पाप नहीं लगेगा।" वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा।

"अच्छा तो क्या दही लानेवाली ग्वालिन का कसूर है ? उसको मला कैसे मालूम कि हवा से टोकरी के ऊपर ढ़का कपड़ा उड़ गया था या साँप का विष दही के हँडिया में गिर पड़ा था ? इसलिये ग्वालिन को पाप नहीं लगना चाहिये।" चित्रगुप्त ने निश्चय किया।

फिर, हवा के कारण कपड़े के उड़ जाने से ही तो साँप का विष दही के हँड़िया में गिर सका, और उस दही को ही तो खाकर पण्डित की मृत्यु हुयी थी। इस लिये कपड़े को हटानेवाले वायु देवता का यह कसूर है क्या ? यह सवाल उठा। अगर हवा न बहे तो लोग जियेंगे कैसे? बहना वायु

का सहज गुण है। वायु देवता का इसमें कुछ भी कसूर नहीं है।" चित्रगुप्त ने सोचा।

तो क्या यह कसूर विष उगलनेवाले साँप का है ? यह तो ठीक नहीं जँचता। गिद्ध के पञ्जों में फँसे; मौत के समय, दर्द के कारण उसने विष उगला था। वह विष कहाँ गिर रहा है, उसको क्या मालूम? क्या साँप ने कोई ख्वाब देखा था कि उसका विष ठीक दही में ही पड़ेगा ? इसलिये साँप को दोषी ठहराना उचित नहीं लगता।

अब रह गया गिद्ध। उसने अपने आहार के लिये जैसे तैसे साँप पकड़ा था, बाकी गड़बड़ से भला उसका क्या सम्बन्ध ? फिर दही की हँडिया में विष उगलने के लिये उसने तो साँप को बाधित नहीं किया था। इसलिये गिद्ध भी निरपराध हैं।

चाहे किसी तरह भी सोचें, इनमें से किसी को भी दोषी मानने की गुञ्जाइश नहीं है। चित्रगुप्त इस विषय पर कोई निश्चय न कर पाया, वह यमराज के पास सलाह के लिए गया। यमराज को भी कुछ न सूझा। उसने वहाँ उपस्थित धर्मवेत्ताओं से पूछा। वे भी न्याय न कर पाये।

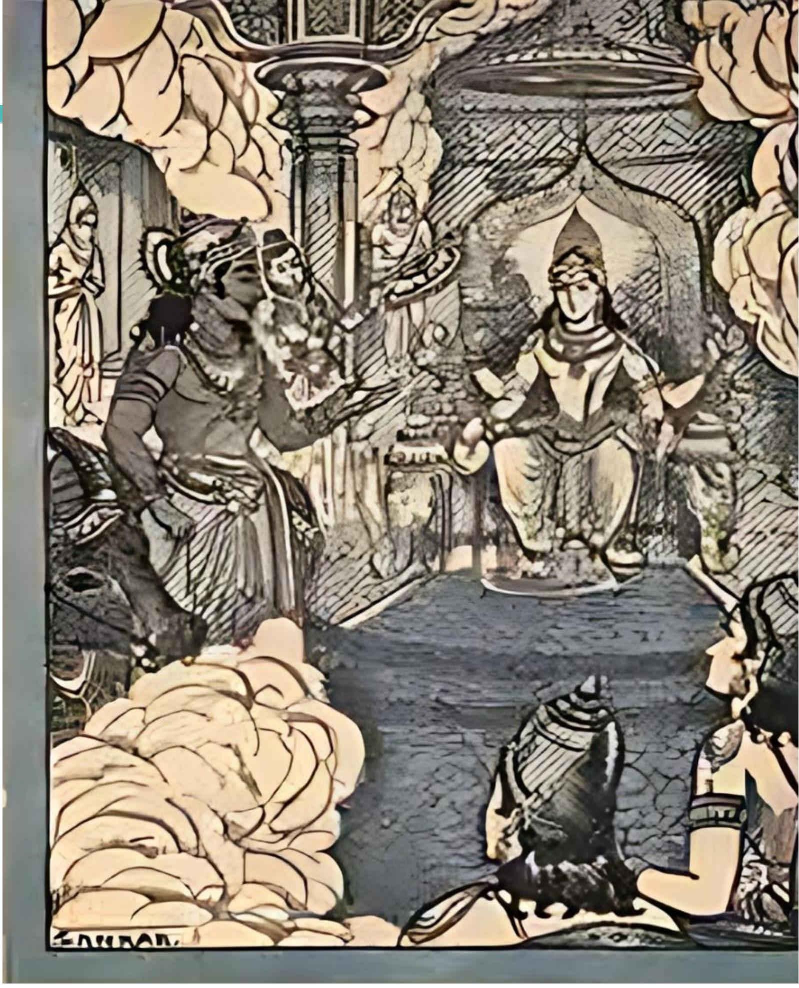

यमराज ने जाकर विष्णु के पास निवेदन किया। विष्णु भी हक्का-वक्का रह गया। उसने दरबार बुलाया, पर कोई भी फैसला न कर पाया। तब यमराज ने चित्रगुप्त से कहा-"यह समस्या इस तरह सुलझनेवाली नहीं है। जब तक मैं निश्चय न कर लूँ, किसी को भी दोषी न लिखना।"

यह कह यम ने अपने सिपाहियों को भूलोक में भेजा। एक दिन दो ब्राह्मण एक पेड़ के नीचे आराम कर रहे थे। उनमें से एक को पक्षियों की भाषा आती थी। पेड़ पर बैठा पक्षियों का जोड़ा, गिद्ध के मुख

सुनी घटना, कौशिक द्वारा दी हुई दावत, पण्डित की मृत्यु और मृत्यु के कारण यम की दौड़-धूप के बारे में बातें कर रहे थे। यह सब सुन, उस ब्राह्मण ने दूसरे ब्राह्मण से कहा- "भला, इसमें कौन-सी बड़ी बात है ? अगर मुझसे पूछते, तो में झट फैसला दे देता। बिना पकायानों की परीक्षा किये, अतिथि को परोसने के कारण ही तो पण्डित की मृत्यु हुई हैं। यह पाप कौशिक का ही है।"

उसी सयय, भूमि की ओर आते हुये यमदूतों ने उस ब्राह्मण की बातें सुनीं। वे उसको यम के सामने खींच कर ले गये। "ये बातें तूने कही हैं कि नहीं ?" यम ने ब्राह्मण से पूछा। "मैंने कही हैं।" ब्राह्मण ने निर्भय होकर जवाब दिया।

तब यमराज ने दो घड़े दही के मँगाये। उसमें से एक में उसने चुपके से विष मिलवा कर ब्राह्मण के सामने रखवा दिया । "ब्राह्मण! यह बताओ इन दोनों घड़ों में से किसमें विष मिला हुआ है ?" यमराज ने पूछा।

ब्राह्मण को काटो तो खून नहीं। उन दोनों घड़ों में से किसमें विष मिला हुआ था, यह जानने के लिये पहिले उसको चखना पड़ता। अगर वह विषवाला घड़ा हुआ, तो, चखने पर वह मर जाता।

तब यम ने गुस्से में कहा-"ब्राह्मण ! जब तुम्हें न मालूम था, तब दूसरों को दोषी नहीं बनाना चाहिये था। तुम्हें ऐसे रहना चाहिये था, जैसे कुछ न मालूम हो। इस कारण पण्डित को मारने का पाप तुझे ही मिलेगा।" यमराज ने यह चित्रगुप्त से उसके हिसाब में लिखने के लिये कहा। किसी का किया हुआ पाप किसी और को लगा।

तीन हजार वर्ष पहिले चीन के सम्राट ने एक सुन्दर कन्या से विवाह किया। उस कन्या का नाम था सिलिङ्गीश। उसकी उम्र चौदह वर्ष की थी। चीन सम्राट की मुख्य रानी होने के कारण सिलिङ्गीश को किसी प्रकार की कमी न थी। सवेरे से शाम तक उसका मन बहलाने के लिये नाचने वाले और गवय्ये वगैरह रहते। उसकी हर चाह को पूरी करने के लिये नौकर मौजूद थे।

इतना होने पर भी, सिलिङ्गीश हमेशा फिक्र में पड़ी रहती। निरन्तर उसकी आँखों से आँसू बहते रहते। उसका दुःख दूर करने के लिई कईयों ने प्रयत्न किया; मगर कुछ फायदा न हुआ। उसके दुःख का कारण यह था कि वह पहले कभी माँ-बाप को छोड़ कर अलग न रही थी, फिर छोटी लड़की ही तो थी। माँ-बाप भाई-बहिनों की याद में वह काँटा हो गई।

यह जान कर कि मुख्य रानी चिन्ता से व्याकुल है, सम्राट अपने दो मन्त्रियों को साथ लेकर बगीचे में गया। बगीचे में शहतूत के पेड़ के नीचे बैठी पत्नी के पास जाकर राजा ने पूछा-"सिलिङ्गीश ! तुम्हें किस बात की कमी है? तुम्हारे कोमल कपोल क्यों आँसुओं से गीले हैं ? तुम्हारी तबीयत क्या ठीक नहीं है? कहो भी !"

"स्वामी! मुझे किसी चीज़ की कमी नहीं है। आप फिक्र मत कीजिये। जरा दिल मचला हुआ है, और कुछ नहीं।" सिलिङ्गीश ने कहा।

सम्राट ने मन्त्रियों को देख कर कहा-"तुम जल्दी ही रानी को खुश करने के लिये कोई तरकीब सोचो।" यह कह वह चला गया।

मन ही मन कुछ बड़बड़ाते हुये मन्त्री भी चले गये।

इस बीच में नौकरानियों ने चाय लाकर महारानी के सामने रखी। रानी ने आदतन स्वयं चाय बनाई और प्यालों में भर कर नर्तकों, और गायकों को दी और अपनी प्याली सामने रख ली। चाय जरा गरम थी; या अभी उसको पीने की इच्छा न थी; रानी ने तुरन्त चाय नहीं पी।

उसी समय शहतूत के पेड़ पर से कोई चीज़ महारानी के चाय के प्याले में गिरी; चाय छिलक कर महारानी की कीमती पोशाक पर गिरी। नौकरानियाँ उसे पोंछने के लिये रानी की तरफ बढ़ी।

"मेरी पोशाक के बारे में फिक्र मत करो: पहले यह तो देखो, इस प्याले में क्या चीज़ गिरी है।" महारानी ने कहा।

नौकरों ने प्याले में से, तागे जैसी कोई चीज़ निकाल कर रानी के हाथ में रखा। वह कुछ न था, सिवाय शहतूत के पेड़ पर लगी रेशम के कीड़ों की रेशम की गाँठ। उस प्रकार की रेशम की गाँठें पेड़ पर कई सारी थी।

चाय में पड़े रेशम की गाँठ को जब नौकरानियाँ बाहर निकाल रही थीं, सिलिङ्गीश ने एक बात बड़े अचरज से देखी। रेशम की गाँठ से बहुत पतले, चमकीले तागे निकल रहे थे। "अहा ! अगर इस सुन्दर तागे से कपड़े बुने जायें तो कपड़े कितने अच्छे लगेंगे।" सिलिङ्गीश ने सोचा। दूसरे ही क्षण उसको एक और बात सूझी-"यह तागे पतले जरूर हैं, पर आसानी से टूटते नहीं हैं। इसके अलावा इस छोटी-सी रेशम की गाँठ में, ऐसा लगता है, जैसे हज़ारों गज तागा हो। अगर इसको सावधानी से लपेटा जाय तो अच्छा तागा

बन सकता है। तब करघे लगवाकर एक ऐसा कपड़ा तैयार किया जा सकता है, जिसे संसार में पहले किसी ने भी न देखा हो।"

मन में इस ख्याल के आते ही महारानी की उदासी भी जाती रही। वह उत्साह के साथ उठी और नौकरानियों को बुला कर रेशम के तागे की कड़ियाँ बनाने के लिये कहा। वे तागा निकाल कर, छोटी-छोटी लकड़ियों पर लपेटने लगीं।

"कपड़ा बनाने के लिये ऐसा तागा कितना चाहिये? तुम सब पेड़ पर लगी रेशम की गाँठों को इकट्ठा कर चाय में डालो।" महारानी ने कहा।

किसी को भी एक क्षण की फुरसत न थी। जिसको काम-काज न होने के कारण एक एक घड़ी युग की तरह लगती थी, उसी महारानी को अब समय भागता सा लगता था। साँझ होते होते रेशम की कई कड़ियाँ बन गई। फिर भी बहुत सारा काम अभी बाकी था। रानी ने बढ़ईयों को बुलाकर हुक्म दिया- "देखते हो यह तागा। इस तागे को बुनने के लिये तुरत एक करघा तैयार करो। सवेरे से पहिले करघा मेरे कमरे में होना चाहिये।"

अगले दिन सम्राट ने मन्त्रियों को बुला कर पूछा-"महारानी को खुश रखने के लिये तुमने क्या उपाय सोचा है ?"

"अच्छा महाराज! अगर एक सुन्दर मोर को लाकर बगीचे में रखा जाय, तो रानी उसके रङ्ग-बिरङ्ग पंखों को देखती हुई...." मन्त्री गुनगुनाने लगा।

सम्राट दूसरे मन्त्री की ओर देखने लगा। "हमारे बगीचे में जल-कीड़ा के लिये कमलों वाला तालाब अगर बनाया गया, तो

महारानी उसमें नहाती, तैरती।" दूसरे मन्त्री ने कहा।

यह जान कर कि उसके दोनों मन्त्रियों को कोई अच्छा उपाय नहीं सूझा है, सम्राट ने रानी के लिये खबर भिजवाई।

"प्रभू! रानी जी अपने कमरे से अभी बाहर नहीं निकली हैं।" नौकरों ने कहा।

"इतनी देर हो गई, अभी तक कमरे से नहीं निकली हैं?" सम्राट ने पूछा। उसे अपनी प्रिय पत्नी के स्वास्थ्य के बारे में फिक्र होने लगी। वह तुरन्त सिंहासन से उठ सीधे रानी के कमरे में गया। सम्राट ने कमरे के अन्दर घुसते ही जो दृश्य देखा, उससे वह चकित भी हुआ और आनन्दित भी।

महारानी, दुःख की तो बात दूर, एक अज़ीब करघे के सामने बैठी अपूर्व, अमूल्य महीन तागों से चमकीला मुलायम कपड़ा बना रही थी।

महारानी ने सिर ऊँचा कर सम्राट की तरफ़ देखा। उसकी आखें आनन्द के कारण चमक रही थीं। वह मुस्कुराई। "महाप्रभू। मैंने अपने दुःख से आप को दुःखित किया। उसके परिहार के

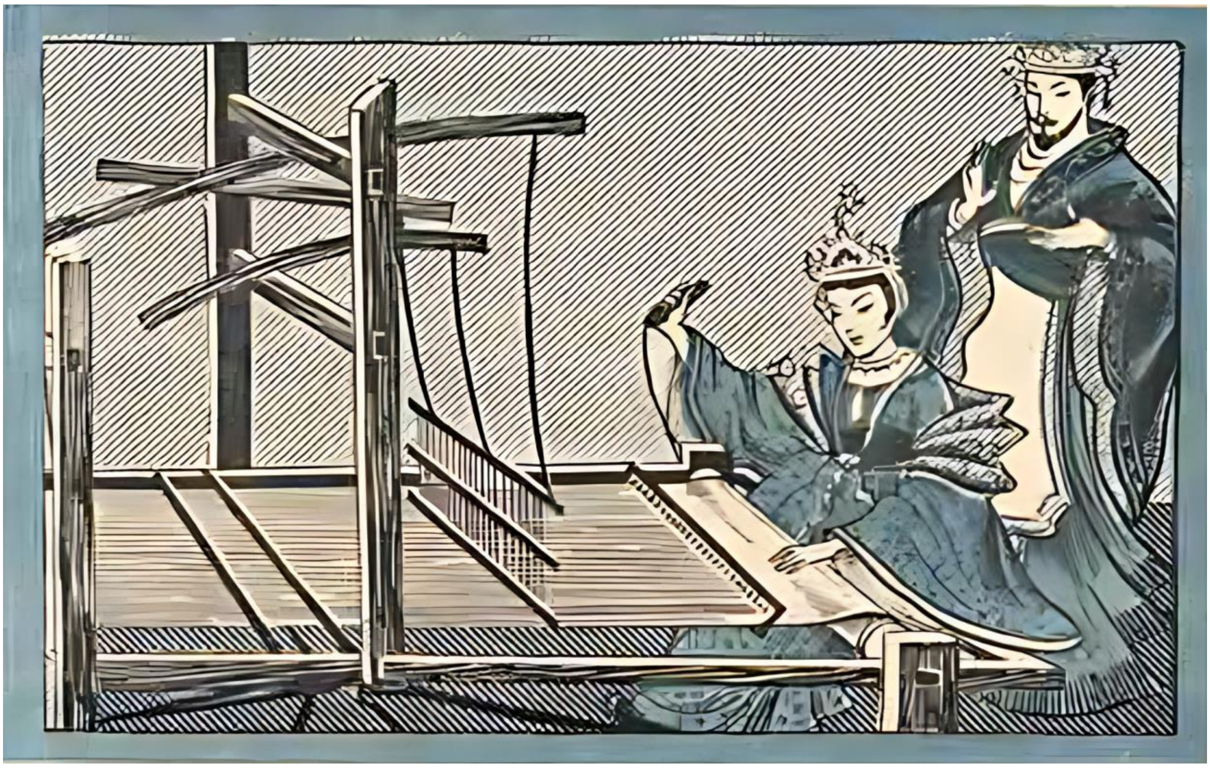

लिये में यह "देवना वस्त्र" आपको भेंट कर दूँगी। मना तो नहीं करेंगे?" रानी ने कहा।

"इतने अमूल्य वस्तु का उपहार जब मिल रहा है, क्या भला मैं मना कर सकता हूँ ?" सम्राट ने कहा।

सिलिङ्गीश ने गुज़री हुयी सारी घटना के बारे में पति से कहा।

"आपकी पत्नी होकर मेरे लिये यह काम करना अच्छा नहीं है। इसीलिये इस बात को मैंने किसी से नहीं कहा है।" महारानी ने कहा।

"मुझे तो इसमें कोई एतराज नहीं है। तेरे मन को बहलाने में अगर कोई सफल होता तो उसको मैंने आधा राज्य देने के लिये भी निश्चय कर रखा था। तुम खुश हो; यही काफी है।" सम्राट ने कहा।

"तो, महाप्रभू। मेरी एक इच्छा पूरी कीजिये।" रानी ने कहा।

"जो तुम चाहो, माँगो।" सम्राट ने कहा।

"हज़ार शहतूत के पेड़ों का मेरे लिये एक बाग लगवा दीजिये।" रानी ने कहा। राजा ने उसकी इच्छा पूरी की। संसार में सर्व प्रथम सिलिङ्गीश ने ही रेशमी कपड़ा बुना था। अब भी चीनी भाषा में "सी" का अर्थ रेशम है। उसके बाद भी, चीन की महारानियाँ, उसकी परम्परा का पालन करती हुयी, साल में एक दिन अपने हाथों से रेशम के कीड़ों को खाना खिलाती हैं।

होते होते, रेशमी कपड़े का रहस्य चीन से और जगह भी गया। इसी कारण हमारे पूर्वज रेशम को 'चीन का कपड़ा ' कहते थे। यद्यपि और देशों में भी रेशम तैयार होता है, परन्तु चीन के रेशम की अपनी खासियत है।

जब ब्रह्मदत्त काशी का परिपालन कर रहा था, तब बोधिसत्व राज पुरोहित के रूप में काम कर रहे थे। वे चारों वेद, छः दर्शन, अट्ठारह पुराणों में पारङ्गत थे। इसके अतिरिक्त, लोगों को अपने वश में करने के लिये उन्होंने एक अपूर्व मन्त्र भी सीख लिया था।

उस महा-मन्त्र का पाठ करने के लिये एक दिन राज पुरोहित, एकान्त में जा, एक शिला पर पद्मासन लगा कर बैठ गया। पास की झाड़ियों में छुपे एक नर लोमड़ी ने, जैसे जैसे वे मन्त्र का उच्चारण करते जाते थे, उसे सुन कर मन्त्र को याद कर लिया। वह लोमड़ी कोई मामूली लोमड़ी न थी। पिछले जन्म में वह प्रसिद्ध मन्त्रवैता थी, इसलिये एक बार सुनने मात्र से ही राज पुरोहित का वह अपूर्व मन्त्र उसको कण्ठस्थ हो गया। जङ्गल में जाने के बाद अपूर्व मन्त्र पढ़ कर उसने सैकड़ों लोमड़ियों को अपने आधीन कर लिया। बाद में उस मन्त्र के प्रभाव से, जङ्गल में रहनेवाले हाथी, घोड़े, शेर, हरिण और कहाँ तक कहा जाय, बन के सभी पशुओं को उसने अपने पास बुला लिया।

जब सब जन्तु वहाँ इकट्ठे हो गये, तो उसने घोषणा की-"मैं अब से तुम्हारा राजा हूँ। यदि तुम में राज-भक्ति बनी रही, तो भविष्य में बड़े-बड़े कार्य सम्पन्न किये जा सकते हैं। आज से मेरा नाम शब्ददत्त है।"

उस नर लोमड़ी के बगल में मादा लोमड़ी रानी बनकर बैठी हुई थी। दो हाथियों पर एक शेर चढ़ा हुआ था। उस शेर पर लोमड़ी राजा अपनी रानी के साथ

का. ना. मोकाशी

आसीन था। एकत्रित जन्तु उनका जय-जयकार कर रहे थे। अत्यन्त वैभव के साथ उसका पट्टाभिषेक हुआ।

परन्तु लोमड़ी राजा इतने अधिकार और ऐश्वर्य से तृप्त नहीं था। उसको बेहद घमण्ड हो गया था। "जङ्गल के इन मूक-पशुओं को वश में लाना कौन-सा बड़ा काम है; तारीफ तो तब है, जब मैं काशी राज्य को भी जीत लूँ।" उसने सोचा। राज्य वृद्धि की महत्त्वाकांक्षा से अपने परिवार को साथ लेकर काशी नगर पर हमला करने के लिये वह निकल पड़ा।

नगर से एक कोस दूर ठहर कर, लोमड़ी राजा ने काशी राजा के पास अपना दूत यह कह कर भेजा-"या तो अपना राज्य छोड़ कर हमें दे दीजिये नहीं तो हम से आकर युद्ध कीजिये।"

यह खबर सुनते ही काशी नगरवासी भयभीत हो उठे। डर के मारे उन्होंने अपने घरों के दरवाज़े बन्द कर लिये और बाहर निकलने का नाम नहीं लिया।

तब राज पुरोहित के रूप में काम करते हुये बोधिसत्व ने राजा के पास जाकर निवेदन किया-"महाप्रभू।

आप घबराइये मत। लोमड़ी राजा की बात मुझ पर छोड़ दीजिये। उसका घमण्ड में दूर कर दूँगा। उसको वश में करने का उपाय मेरे सिवाय और कोई नहीं जानता है।"

तब बोधिसत्व ने किले के बुर्ज पर खड़े होकर लोमड़ी राजा को पुकार कर पूछा-"ओ शब्ददत्त ! तेरा हम पर हमला करना भी खूब है, क्या तू इस प्रकार हमारे राज्य को अपने वश में लाना चाहता है ?"

इसका जवाब लोमड़ी राजा ने यों दिया-"इसमें क्या रखा है? हमारे शेर गरजना शुरू करेंगे और तुम्हारी सेना और जनता

भागना शुरू कर देगी, और तब हम किले को जीत लेंगे।"

यह सुन बोधिसत्व ने परिहास करते हुये कहा-"लोमड़ी महाराज ! क्या तुम पागल हो गये हो तुम सोचते हो कि जङ्गल का राजा एक बूढ़ी लोमड़ी की आज्ञा सुनकर गरजना शुरू कर देगा ?"

घमण्डी लोमड़ी ने गर्व के साथ कहा-"मेरी आज्ञा का पालन शेर जरूर करेंगे, चाहते हो तो अभी शेर को आज्ञा देकर दिखलाता हूँ।"

"दे सकते हो तो दो।" बोधिसत्व ने कहा।

तत्क्षण शब्ददत्त ने 'गरजो' सङ्केत करते हुये शेर की पीठ पर लात मारी। शेर तीन बार ऐसा गरजा कि भूमि काँप उठी। दोनों हाथी, जिन पर शेर खड़ा था, शेर का गर्जन सुन घबरा कर अलग अलग हो गये।

लोमड़ी राजा और उसकी रानी तुरन्त घड़ाम से नीचे गिरे। उस हालत में हाथियों ने भय से इधर उधर दौड़ना शुरू किया, और लोमड़ी राजा को अपने पैरों के नीचे कुचल दिया। लोमड़ी की हड्डी-पसली एक हो गई। वह वहीं ढेर हो गया।

उस गड़बड़ी में हाथी ही नहीं, बल्कि और जन्तु भी आपस में भिड़ पड़े। कई लड़ झगड़ कर वहाँ मर गये। और जो मरते मरते बच गये थे, उन्होंने जो दौड़ लगाई, जङ्गल में ही जाकर रुके। काशी नगर के आसपास पशुओं के ही शव पड़े हुये थे।

तब बोधिसत्व ने घोषणा करवाई। जनता भी अपने अपने घरों के दरवाजे खोल कर निश्चित हो, बाहर आ गई। तब से काशी नगर की प्रजा बिना किसी डर के, सुख से रहने लगी।

सुमरसेन और उसके सैनिक थोड़ी दूर भाग कर रुक गये। जहाँ वे खड़े थे, वहाँ कुम्भाण्ड के नौकर......जङ्गलियों का चिल्लाना सुनाई पड़ रहा था। समरसेन को मालूम हो गया कि वे उनका पीछा छोड़, जान बचाकर भागे जा रहे थे। चतुर्नेत्र और एकाक्षी कहीं आसपास नज़र नहीं आते थे। मगर मेड़िये अब भी चिल्ला रहे थे। वे पायल जङ्गलियों को खा रहे थे।

थके माँदे सैनिकों के साथ समरमेन भी एक पेड़ के नीचे आराम करने लगा। समरसेन जान गया कि कुम्भाण्ड भी धन-राशि से भरी नाव को हथियाने की पूरी कोशिश कर रहा था। उस नाव को लूटने के लिये, अब चार व्यक्ति थे; यानी समरसेन, कुम्भाण्ड, एकाक्षी, और चतुर्नेत्र। मगर कौन इनमें जीतेगा? किसके हाथ यह नाव लगेगी?

इधर समरसेन तो यह सोच रहा था और उधर सैनिक इस फिक्र में थे कि कब कुण्डलनी द्वीप को वापिस पहुँचा जाय। उनको नाव में रखी सम्पत्ति तो चाहिये ही नहीं थी, बल्कि उनका ख्याल था कि उनकी सब आफतों का मूल कारण वह नाव ही है। वे गुस्से में थे।

"सेनापति ! हमारा इसी में भला है कि हम इस द्वीप को छोड़ कर चले जायें। आप जरूरी तैयारियाँ करवाईये।" एक सैनिक ने कहा। बाकी सैनिकों ने यही इच्छा प्रकट करते हुये अपने सिर हिलाये।

समरसेन ने सैनिकों को देखते हुये सिर एक तरफ कर कहा-"यह तो हमने पहले ही निश्चय कर लिया है कि इस द्वीप से बाहर जाने में ही हमारा श्रेय है। इसलिये वह बात रह रहकर कहने में कोई फायदा नहीं है। सोचना तो यह चाहिये कि इस द्वीप को कैसे छोड़ा जाय और कुण्डलनी द्वीप कैसे पहुँचा जाय? उसके लिये क्या उपाय है ?"

सिपाही तो कोई उपाय नहीं जानते थे। वे तो सिर्फ यह चाहते थे कि जल्द से जल्द घर वापिस पहुँचा जाय। वे यह भी न जानते थे कि जो जहाज वे किनारे पर छोड़ आये थे, उनकी क्या हालत है। वे अब गये थे या सुरक्षित थे ? फिर उन लोगों को यह भी देखना था कि एकाक्षी और चतुर्नेत्र की तरफ से कोई रुकावट न हो। उनकी आँख बचा कर भागना होगा। यह सबको मालूम ही था कि यह कोई आसान काम न था। दिक्कतें झेली जा सकती थीं, पर इन नाविकों का मुकाबला करना मुश्किल था।

'यहाँ से भाग जाने के लिये क्या चतुनेत्र हमारी मदद नहीं करेगा?” एक

सैनिक ने पूछा। समरसेन को न सूझा कि उसका क्या जवाब दिया जाय। उसने कभी चतुर्नेत्र से कहा भी न था कि वह उनको इस द्वीप से कुण्डलनी द्वीप तक पहुँचा दे। उसको यह भी सन्देह था कि चतुर्नेत्र वह काम कर सकेगा कि नहीं। अगर करना भी चाहे, तो एकाक्षी करने देगा कि नहीं।

जब सब इस उघेड़बुन में थे कि एक बाण उस पेड़ पर लगा, जिसके सहारे समरसेन बैठा हुआ था। बाण समरसेन के सिर से ठीक एक फुट ऊँचे लगा था। झट समरसेन उठ खड़ा हुआ और चिल्लाया-"पेड़ की ओट में हो जाओ। कुम्भाण्ड कहीं छुपा हुआ हमें मारने की कोशिश कर रहा है।" उसने भागना शुरू किया। उसके पीछे पीछे सैनिक भी भागने लगे। फिर "पकड़ो, मारो !" कुम्भाण्ड की आवाज़ सुनाई दी। जङ्गली भी पेड़ों की ओट से चारों तरफ से आने लगे। समरसेन जान गया कि वह खतरे में है। इसमें अक्लमन्दी न थी कि पाँच सैनिकों को ले कर, पीछा करते हुये जङ्गलियों का मुकाबला किया जाय। उसने सोचा, फिलहाल भाग जाना ही अच्छा है। रास्ता तो

कोई था नहीं। उन्होंने पेड़-पौधों को चीरते हुये भागना शुरू किया। उनके पीछे- पीछे कुम्भाण्ड और जङ्गली भी चिल्लाते चिलाते भागे आ रहे थे। एकाक्षी और चतुर्नेत्र का कुछ पता नहीं था।

पेड़ों की गहरी छाया में कुछ देर ठहर कर, मौका पाकर दौड़ते दौड़ते समरसेन और उसके साथी कुछ दूर पहुँचे। तब चान्दनी भी कम होती जा रही थी। क्यों कि अन्धेरा बढ़ रहा था। इसलिये समरसेन को भागने का मौका मिल गया। वह तेजी से भागता गया।

भागते भागते उन्हें पहाड़ में एक गुफा दिखाई दी। कुम्भाण्ड और जङ्गली अब भी उसका पीछा कर रहे थे, यह समरसेन उनके शोर से जान गया था। समरसेन ने सोचा, भागने से तो अच्छा है कि इस गुफा में रात काटी जाय। आखिर कितनी दूर भागता?

वे गुफा के नज़दीक गये। सैनिक भी समरसेन के मन की बात का अनुमान कर उस तरफ दो चार कदम आगे बढ़े। तुरन्त समरसेन ने हुक्म दिया-"ठहरो।" वे यह सुन, जहाँ थे, वहाँ खड़े हो गये। पर वे अचम्भे में थे ।

"जल्दी में गुफा में घुसना खतरनाक है। उसमें, हो सकता है, शेर आदि क्रूर जन्तु हों।" समरसेन ने कहा।

"तो फिर कुम्भाण्ड की आँख बचाकर भागा कैसे जाय ?" एक सैनिक ने हड़बड़ाते हुए पूछा।

"गुफा में शेर है कि नहीं, यह गुफा में घुसे बगैर कैसे पता चलेगा?" एक और सैनिक ने झुञ्झलाते हुये सवाल उठाया। वे सब गुफा के अन्दर जाने के लिये उतावले हो रहे थे।

यह सवाल सुन समरसेन को हँसी आई। क्योंकि शेर है कि नहीं, यह देखने के लिये वह शेर का खाना ही शायद बन जाय। उसको अफ़सोस हुआ कि वे इतना भी नहीं जानते थे।

"तुम में से दो तलवार लेकर तैयार रहो। में गुफा में बाण चला कर मालूम करता हूँ कि अन्दर शेर है कि नहीं। अगर शेर हुआ तो वह हम पर कूदेगा, खबरदार! चौकन्ने रहो।" समरसेन ने कहा।

तब उसने धनुष में बाण लगाकर छोड़ा। उसे झट पता लग गया कि उसका अनुमान ठीक था। एक शेर गरजता हुआ बाहर निकला। तलवार लिये हुये सैनिक उस पर लपके। मगर शेर तब तक, पीछे हट कर जङ्गल में भाग गया था। समरसेन तलवार हाथ में लेकर आगे बढ़ा। पीछे-पीछे तलवार लेकर सैनिक भी चलने लगे। उन्होंने गुफा में पैर रखे ही थे कि अन्दर से एक प्रकार की कराहट सुनाई पड़ने लगी। झट समरसेन पीछे हटा। उसके साथ सैनिक भी चौंके।

"गुफा में एक और घायल शेर नज़र आता है। वह किस हालत में है, यह

जाने बिना अन्दर जाना खतरनाक है; आग बनाओ।" उसने कहा।

तुरन्त सैनिकों ने पत्थर रगड़ कर गुफा के पास आग बनाई। एक मशाल बनाकर, समरसेन गुफा के अन्दर देखने लगा। वहाँ एक शेर का बच्चा बणों से घायल हो तड़प रहा था। उसके पास एक और चिल्लाता शेर का बच्चा था।

"अब डर नहीं है। अन्दर आओ!" यह कह समरसेन अन्दर गया। शेर का बच्चा पीछे की ओर जाने लगा। समरसेन भी उसको निडर हो देखता, सीटी बजाने

लगा। थोड़ी देर में उसने गरजना छोड़ दिया और एक कोने में जाकर बैठ गया। सैनिक और समरसेन भी अन्दर आकर बैठ गये।

तब तक पौ फट चुकी थी। कुम्भाण्ड और उसके जङ्गली अनुचरों का शोर कभी कभी सुनाई पड़ रहा था, जो यह सूचित करता था कि वे अब भी जङ्गल में उनकी खोज कर रहे थे। कहीं ऐसा न हो कि आग देख कर वे उनका पता लगा लें, समरसेन ने आग भी बुझवा दी।

गुफा में बहुत अन्धेरा था। बाण से घायल हो शेर का बच्चा मर गया था। दूसरा शेर का बच्चा, कोने में बैठा कभी-कभी गरज उठता था। समरसेन डरने लगा कि जो शेर बाहर भाग गया था, अपने बच्चों को देखने के लिये जरूर वापिस आयेगा। उसको इसके अलावा, यह भी मालूम था कि कुम्भाण्ड और उसके सेवक उसकी खोज में जङ्गल छान रहे थे। उसके लिये सावधान रहना अत्यावश्यक था।

समरसेन और उसके सैनिक, डर के मारे आँख भी न मूँद पाते थे। नींद रोक कर वे बैठ गये। समरसेन को डर लग रहा था, अगर कुम्भाण्ड और उसके जङ्गलियों ने यकायक गुफा को घेर लिया तो मौत से बचना मुश्किल हो जायगा। इसलिये उसने सोचा कि सैनिकों को आसपास पेड़ों पर चढ़ा देना अच्छा होगा। .

"यदि हम सब यहाँ बैठे रहे, फायदा तो है ही नहीं, बल्कि खतरा है। तुम जो वे पेड़ दिखाई दे रहे हैं, उन पर चढ़ जाओ और कुम्माण्ड की करतूतें देखो।" समरसेन ने सैनिकों को आज्ञा दी। सैनिक अपने अपने शस्त्रों को लेकर गुफा के बाहर चले गये। पासवाले पेड़ों पर

चढ़कर वे देखने लगे कि कुम्भाण्ड कहाँ है।

गुफा में अकेले बैठे हुये समरसेन को लगा कि कोई पास ही बातचीत कर रहा है। समरसेन यह भी जान गया कि वे उसके सैनिक नहीं थे। उसे सन्देह हुआ, कहीं वह कुम्भाण्ड का गुट न हो। वह धीमे धीमे रेंगते हुये गुफा के दरवाजे तक गया और बाहर झाँक कर देखा। वहाँ कोई न था। समरसेन फिर गुफा के अन्दर चला गया। तब बातें स्पष्ट सुनाई पड़ने लगीं।

यह हालत देखकर उसको बहुत आश्चर्य हुआ। गुफा में कहीं खुफिया दरवाजा तो नहीं है? वह इधर उधर घूमकर देखने लगा। गुफा के पिछवाड़े में से आवाज आ रही थी। तब तो सपरसेन के आश्चर्य की सीमा न रही। उसे सन्देह होने लगा, इतने बड़े पहाड़ पर, उस छोटी सी गुफा के पीछे, मनुष्य कैसे आ सके? जरूर कोई गुप्त-द्वार होगा, यह सोचकर वह और गौर से चारों ओर देखने लगा।

यकायक कील जैसी कोई चीज उसके हाथ में लगी। समरसेन ने उसको पकड़ कर जोर से खींचा। तुरन्त पत्थरों में छुपा एक विचित्र दरवाजा खुला। उसमें से प्रकाश गुफा के अन्दर आ रहा था। वहाँ से थोड़ी दूर तीन व्यक्ति आपस में बातचीत करते हुये समरसेन को दिखाई दिये। उनकी वेषभूषा से लगता था कि वे जङ्गली नहीं थे। खाल की जगह उन्होंने रङ्ग बिरङ्गे कपड़े पहने हुये थे। वह अचरज में पड़ गया कि वे कौन थे।

समरसेन सोच ही रहा था कि क्या किया जाय कि उनकी दृष्टि उस पर पड़ी। उसके दरवाजा बन्द करने के पहिले ही वे समरसेन पर झपटे और उसको बेहथियार कर बाँध दिया।

(अभी और है)

गोलकुण्डा राज्य में एक किसान रहा करता था। एक दिन जब वह अपने खेत में बीज बो रहा था, तो नवाब मामूली पोशाक में घोड़े पर सवार हो, वहाँ आया। नवाब ने सोचा कि उस छोटे से खेत में काम करनेवाले किसान का हालचाल पूछा जाय। उसने किसान से पूछा- "क्यों भाई! खेतीबाड़ी में फायदा होता है कि नहीं?"

किसान ने सिर ऊँचाकर कहा-"क्या फायदा भला? अगर फसल अच्छी हो गई, तो अस्सी-एक रुपये हाथ लग जाते हैं।" वह नवाब को न पहचान पाया था।

"उस रुपये को तुम कैसे खर्च करते हो भाई?" नवाब ने पूछा।

"खर्च क्या करेंगे बाबू साहब! बीस रुपये कर देने में चले जाते हैं। बीस कर्ज़ चुकाने में खतम हो जाते हैं। बीस में उधार देता हूँ। और बाकी बीस स्वाहा हो जाते हैं।" किसान ने कहा।

यह सुन नवाब को बहुत आश्चर्य हुआ।

"मुझे जरा समझाकर बताओ। कर्जा क्या चुकाते हो ? उधार किसे देते हो? पैसे क्यों स्वाहा कर देते हो ?" नवाब ने कहा।

"बाबू ! मैं अपने पिता का पोषण करता हूँ; वह हुआ, लिया हुआ कर्ज चुकाना। मैं अपने लड़के का लालन-पालन करता हूँ- यानी उसको उधार देता हूँ। फिर मुझे अपनी लड़की की परवरिश भी करनी पड़ती है। मतलब यह कि वह पैसा स्वाहा कर देता हूँ।" किसान ने कहा।

किसान के भावपूर्ण उत्तर सुनकर नवाब बहुत प्रसन्न हुआ। उसे थोड़ा बहुत धन दिया और यह भी बता दिया कि

सच्चिदानन्द

वह गोलकुण्ड़ा का नवाब था। उसने तब कहा-"तेरी बातों में बहुत कुछ सच है। जो तुमने मुझसे कहा है, किसी और से न कहना, समझे?" नवाब अपने घोड़े पर चढ़ चला गया।

महल में पहुँचते ही नवाब ने अपने दरबारियों को बुलाकर कहा-"आज सवेरे घोड़े पर सवार हो, मैं उत्तर की तरफ गया। गाँव के करीब एक मील दूरी पर, एक किसान दिखाई दिया। उसको बुलाकर मैंने पूछा कि खेती-बाड़ी में कुछ फायदा होता है कि नहीं। उसने कहा कि अच्छी फसल हो जाने पर, उसको अस्सी रुपये मिल जाते हैं। मैंने पूछा कि उन रुपयों को कैसे खर्चते हो ? किसान ने मेरे सवालों का यों जवाब दिया: बीस रुपये कर देने में खर्च हो जाते हैं; बीस रुपये कर्ज चुकाने में चले जाते हैं; बीस रुपये उधार देता हूँ और बाकी बीस रुपये स्वाहा कर देता हूँ। वह किसान कोई खास पढ़ा-लिखा या समझदार भी नहीं है। खेती कर जिन्दगी गुजर करता है। परन्तु उसने बड़ी अक्लमन्दी से बातचीत की। आप सब तो पढ़े-लिखे

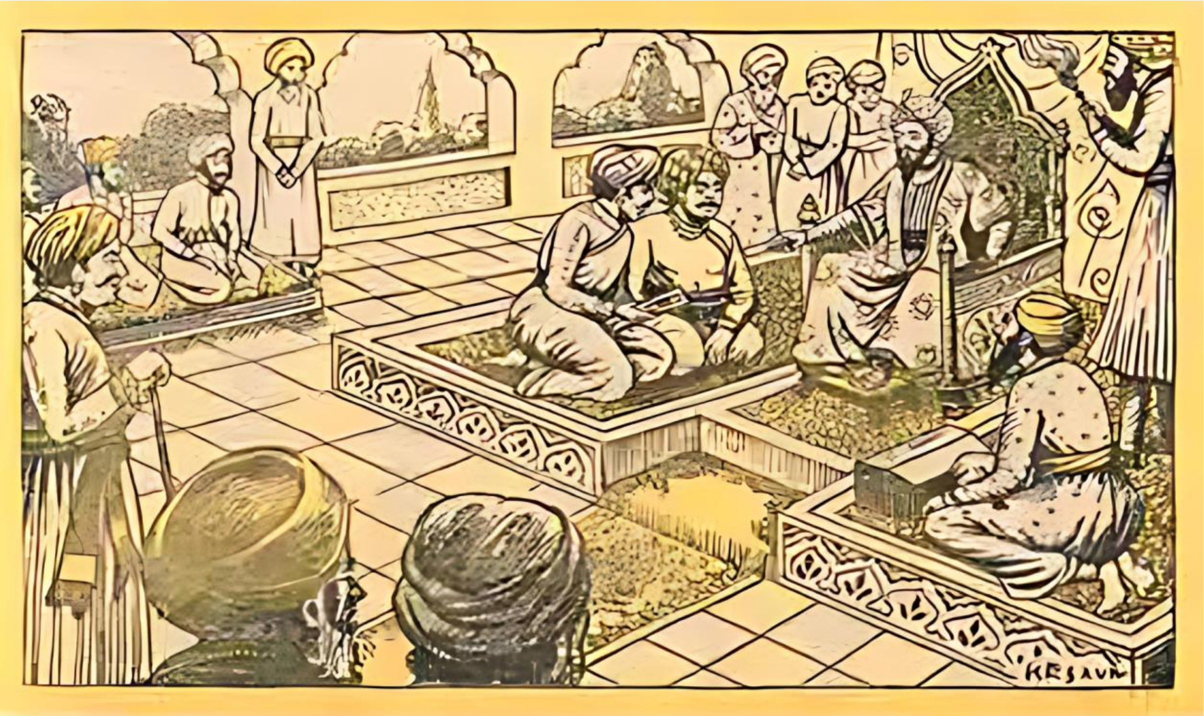

हैं। अगर आप में से किसी ने उसके जवाब का सही मतलब बताया, तो मैं उसको ईनाम में एक जागीर दे दूँगा।"

नवाब की दी हुई समस्या को कोई भी हल न कर पाया। परन्तु एक दरबारी ने पूछ-ताछ कर नवाब से किसान के ठिकाने के बारे में मालूम कर लिया। उसने किसान के पास जाकर पूछा-"सुना है, तूने नवाब को यह जवाब दिया था। अगर तूने मुझे इस जवाब का मतलब बता दिया, तो में तुझे बहुत-सा रुपया दूँगा।" रुपये की थैली उसने किसान के सामने रखी।

थैली देखकर, किसान ने सारी बात साफ-साफ कह दी। नवाब के पास जाकर दरबारी ने समस्या सुलझा दी।

यह जानकर कि किसान ने उसके हुक्म को तोड़ा है, नौकरों को भेजकर नवाब ने किसान को महल में बुलवाया।

"क्यों भाई ! तुमने मेरी बात क्यों नहीं मानी? मैं तुम्हें मौत की सजा देता हूँ। अब कहो, क्या कहना चाहते हो?" नवाब ने पूछा।

किसान घबराया नहीं। उसने धैर्य के साथ कहा-"हुजूर! मैंने तो आपका हुक्म नहीं तोड़ा है। आमके सामने ही मैंने अपने जवाब का मतलब आपके दरबारी को बताया था। जब में वह भेद दरबारी को बता रहा था, तब मेरे सामने सौ मुहरें थीं, और हर मुहर पर आप थे।" किसान ने एक मुहर निकाली और उस पर बनी नवाब की तस्वीर को उसे दिखाया।

किसान की अक्लमन्दी को देखकर नवाब को फिर अचरज हुआ। उसने कहा-"सच है, मुहरों पर में ही हूँ।" उसने किसान को और कुछ धन देकर विदा किया।

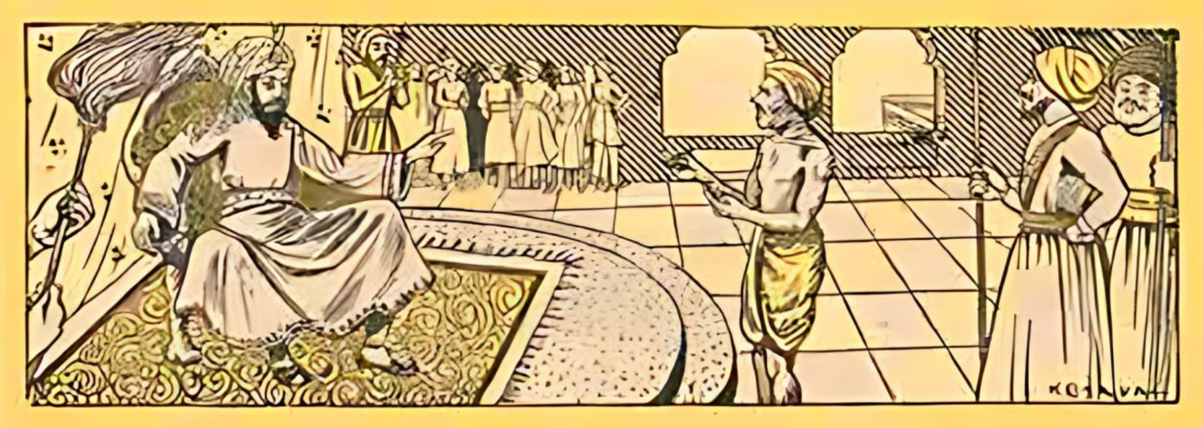

हरिपुर गाँव में एक शिवालय था। शिव अपनी महिमा के लिये प्रसिद्ध हैं। न जाने क्यों, शिवालय में पूजा-पुरस्कार बन्द हो गया था। इसलिये शिवालय खण्डहर-सा लगता था। शिवालय, बगीचा और उसके आसपास की ज़मीन, कुल मिलाकर एक एकड़ थी, और यह फालतू पड़ी हुई थी।

क्योंकि वह शिवालय की सम्पति थी, इसलिये लोग वहाँ घुसते भी डरते थे। परन्तु गाँव के पटवारी की नज़र उस ज़मीन पर थी। पटवारी का नाम था, बनवारीलाल। बनवारीलाल गाँव का बड़ा ज़मीन-जायदाद बाला आदमी था। उसका विरोध करनेवाला आदमी उस गाँव में तो अलग; आसपास भी कोई न था।

इसलिये बनवारीलाल ने धीमे-धीमे वह जमीन हथिया ली थी। वहाँ एक मकान भी बनवा लिया था। एकादशी के दिन, वहाँ उसने धूम-धाम से गृह प्रवेश का संस्कार सम्पन्न किया।

उस दिन, रात को दावत और मनोरञ्जन के बाद घर के लोग जल्दी ही सो गये थे। मगर बनवारीलाल को नींद न आई। तिस पर आधी रात के समय उसने किसी का घर के ऊपर से चिल्लाते सुना था-"कूद रहा हूँ....कूद रहा हूँ...।"

बनवारीलाल ने घबराकर कहा-"नहीं बाबू, नहीं बाबू।" वह बिस्तरे से उठ खड़ा हुआ। उसने सोचा, शायद गृह-देवता बोल रहा है। वह डरने लगा, कहीं ऐसा न हो कि मकान ढह ही जाय। वह एक क्षण भी वहाँ न रह सका। सब को उठाया और बिना किसी के जाने, वह फिर अपने पुराने घर में चला गया।

अहमदुल्लाह खान

"यह सब शिवजी की महिमा है। जब शिवजी की सम्पत्ति ली है, तो उनके सिवाय कौन होगा? पटवारी को अच्छी सजा मिली।" लोग यह सोचने, कहने लगे। बनवारीलाल ने नया मकान तो बनवा लिया था, परन्तु उस तरफ वह भूलकर भी नहीं भटका। इस कारण शिवालय की तरह उस मकान के दरवाजे भी हमेशा बन्द रहते। इस तरह कई महीने और वर्ष गुज़र गये।

उस गाँव में एक दिन एक बेहाल गरीब काम की तलाश में आया। भोजन की बात तो भगवान जाने, उसको रहने के लिये कहीं जगह भी न मिल पाई थी। जिस किसी से जगह माँगी, उसने बनवारीलाल का मकान दिखा दिया।

कुछ भी हो, साहस कर वह गरीब बनवारीलाल के पास गया, और उससे रहने के लिये जगह माँगी।

बनवारीलाल तो चाहता ही था कि उसके घर में दिया जले, कोई रहे। हिचकिचाहट का अभिनय करते हुये उसने कहा-"अच्छा भाई ! एक महीने तक हमारे घर में मुफ्त रहो, मगर बाद में हर महीने चार मुहरों का किराया देना होगा।"

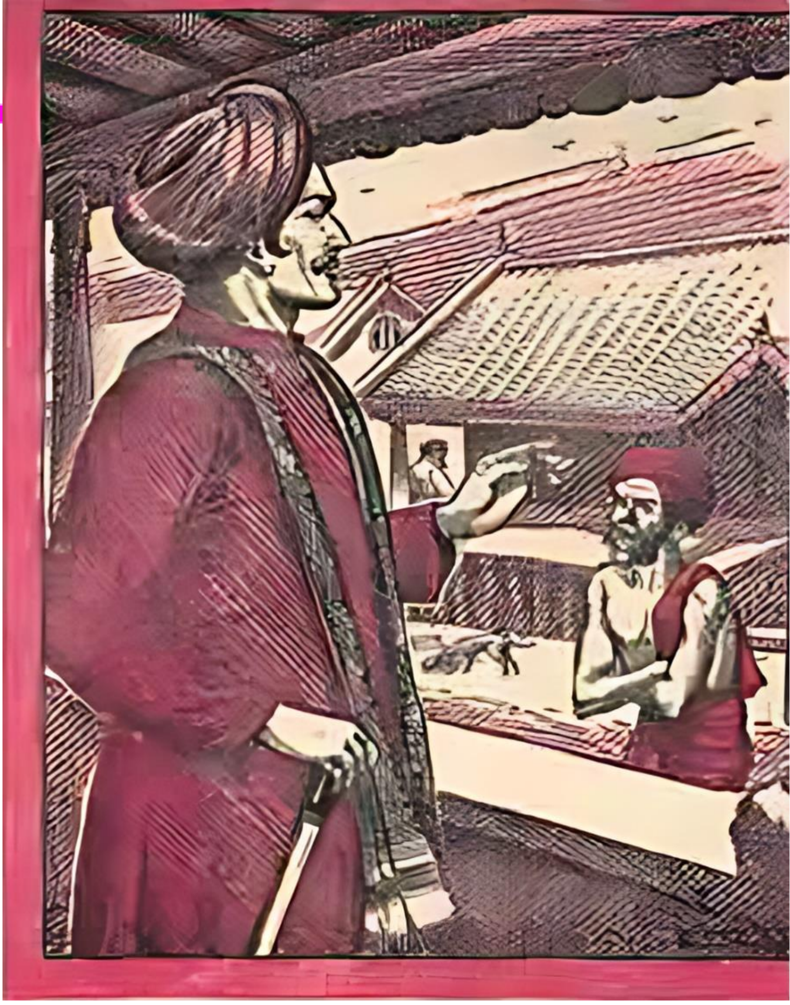

परन्तु उसने जो उस पर बीती थी, उसके बारे में उस गरीब को कुछ भी नहीं बताया। यह सब भगवान की दया जान, गरीब ने पत्नी और बाल-बच्चों के साथ एकादशी के दिन उस घर में प्रवेश किया।

रहने के लिये तो जगह मिल गई थी, मगर भोजन कौन देगा? उस मकान के एक कमरे में उसका परिवार रहने लगा। भूखे बच्चों के रोने-चिल्लाने से कमरा हमेशा गूँजता रहता। गाँव में जाकर लाख कोशिश की, परन्तु उस गरीब को कोई काम न मिला। वह बेरोजगार ही रहा।

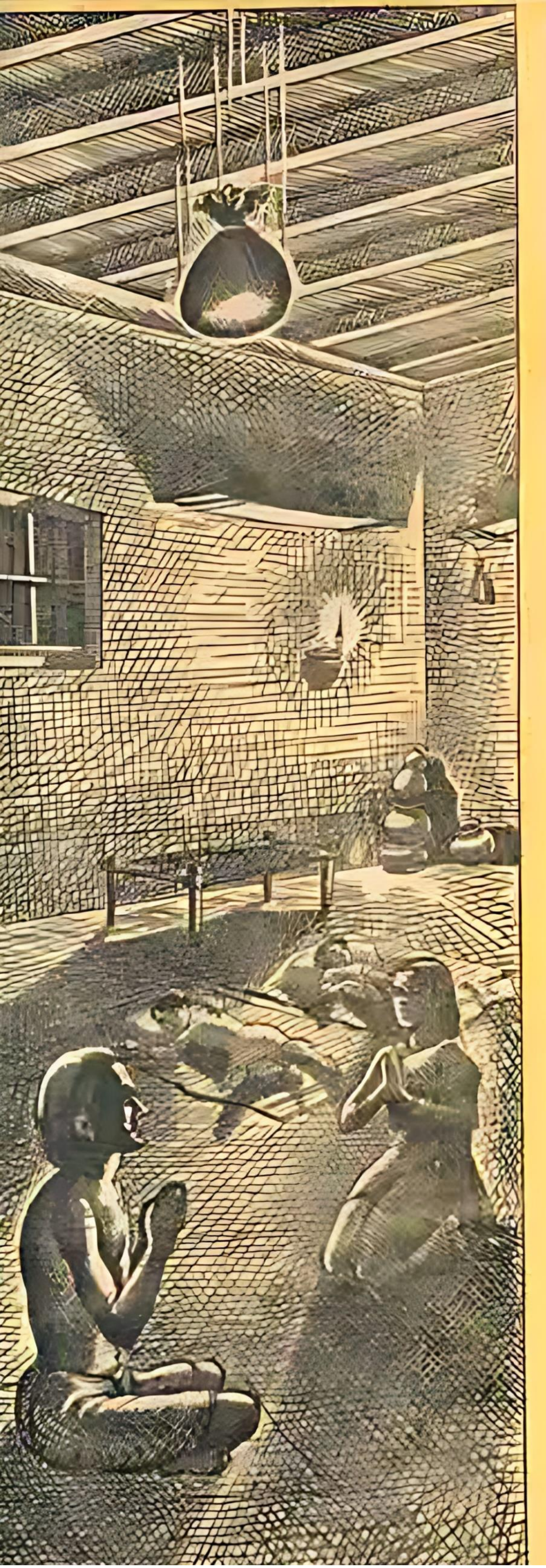

उस हालत में विचारा वह गरीब जिन्दगी से ही ऊब गया। उसे इतना वैराग्य हुआ कि वह सोचने लगा कि अच्छा हो, मै और मेरा कुटुम्ब कहीं जा डूब मरे।

जब वह दारिद्य के मारे तङ्ग आया हुआ था, आधी रात के समय घर के ऊपर से आवाज़ आई-"कूदता हूँ, कूदता हूँ।" वह आवाज़ सुन, वह बिल्कुल नहीं डरा। उसने सोचा- "यह शायद घर का कोई भूत है। अगर घर ढह गया तो अच्छा ही होगा कि हम उसके नीचे दबकर मर जायें। खतम हो यह गरीबी की जिन्दगी।" इसलिये वह चिल्लाया- "कूदों, कूदो, पिण्ड छूटेगा।"

ठीक उसी समय ऊपर से एक मुहरों की थैली नीचे गिरी। थैली देख, परिवार के सब लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। थैली के गिरने के साथ एक आवाज़ भी आई-"भाई। क्योंकि तूने और तेरे कुटुम्ब ने एकादशी के दिन निराहार व्रत किया है, इसलिये तुझे एकादशी का पुण्य फल मिल रहा है। यदि तूने नियमितरूप से प्रति एकादशी के दिन उपवासकर, मेरी उपासना की, तो शिवजी की महिमा से तुझे बहुत लाभ होगा....।"

गरीब और उसके कुटुम्ब ने शिवजी को साष्टाङ्ग प्रणाम किया। अपनी अच्छी किस्मत देखकर, वे फूले नहीं समाये। थैली में से सौ मुहरें निकालकर वे आराम से समय बिताने लगे। चूँकि हर एकादशी के दिन ऊपर से सौ मुहरोंवाली थैली गिरती थी, इसलिये वह जल्द ही धनवान हो गया।

एक बार बनवारीलाल को उस गरीब की हालत देखने की सूझी। वह उसके घर गया। उस गरीब ने बनवारीलाल का खूब आदर-सत्कार किया; क्योंकि उसने उसको मकान दिया था।

बनवारीलाल को उस गरीब का वैभव ऐश्वर्य देखकर बहुत आश्चर्य हुआ। यह सब धन ऐश्वर्य कैसे आया? यह सुनने के लिये बनवारीलाल ज़िद करके बैठ गया। उस गरीब ने बिना कुछ लुकाये छुपाये जो कुछ गुज़रा था, शुरू से अन्त तक सुना दिया।

वह सुनते ही बनवारीलाल को ईर्ष्या तो हुई, उसको धूर्तता भी सूझी। उसने कहा-"अरे! जब से तुमने मेरे मकान में प्रवेश किया है, तब से तुम्हें किराया देना होगा। चूँकि तुम्हें मेरे घर में रहने के कारण ऐश्वर्य मिला है, इसलिये वह ऐश्वर्य मेरा है।

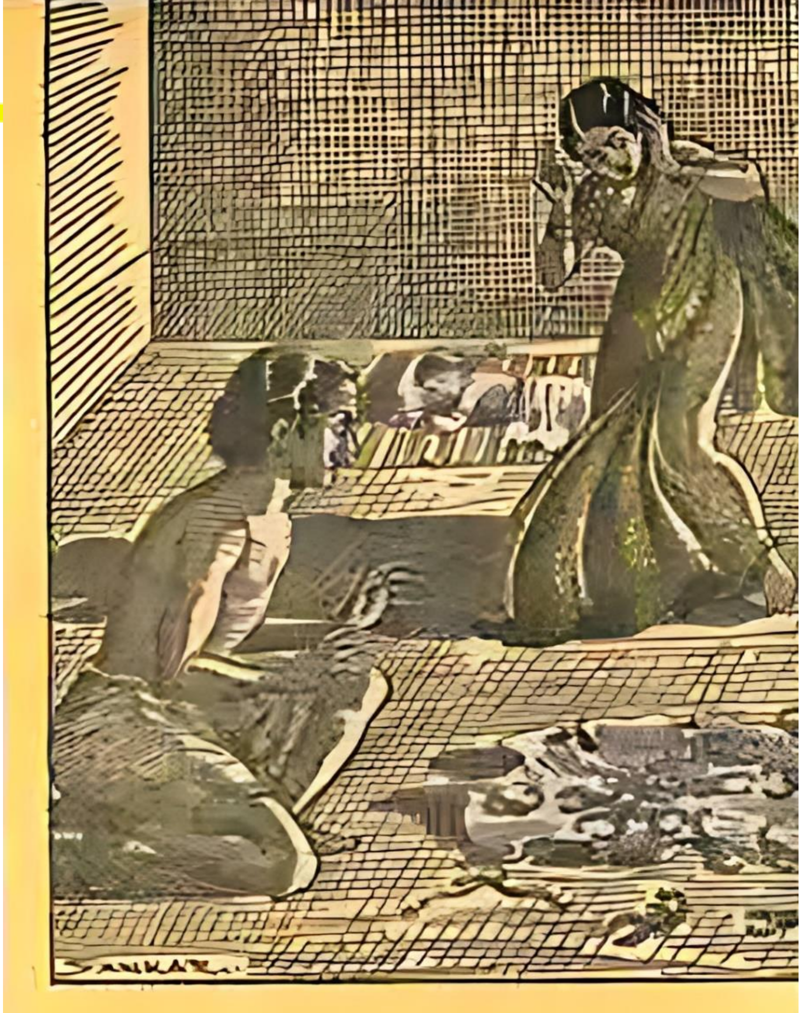

अगर तुमने यह बात किसी से कही, तो खबरदार !" उसने गरीब को डराया धमकाया और महीने के अन्त में घर खाली करने के लिये कहा। और कोई चारा नहीं था; वह गरीब मकान खाली करके चला गया। इस बार बनवारीलाल मन को ढाढ़स बाँधकर अपने नये मकान में फिर रहने आया। एकादशी आई। रात भर वह कुटुम्ब के साथ भजन-कीर्तन करता रहा। एक क्षण भी न सोया। आधी रात के समय-"कूदता हूँ ...! कूदता हूँ...।" की आवाज़ घर के ऊपर

से सुनाई दी। तुरन्त लालच में बनवारीलाल चिल्लाया-"कूद ! कूद ! तेरी ही प्रतीक्षा कर रहा हूँ...।" परिवार के और लोग भी उसके साथ यही चिल्लाये। वे इस उम्मीद में बैठे थे कि मुहरोंवाली थैली गिरे, उसको वे झट ले लें।

इस बीच में ऊपर से एक पोटली गिरी। उन्होंने उसे खोलकर देखा, तो उसमें मुहरों की जगह सौ बिच्छू थे। वे चारों तरफ कूद-फाँद रहे थे। डर के मारे सब दूर-दूर भाग गये।

तब एक आकाशवाणी हुई-"अरे धूर्त! कोई ऐसा काम नहीं, जो तू लालच के मारे न करे। इसलिये तेरे लिये एकादशी का यही फल है। यही नहीं, तेरी भलाई इसी में है कि तू उस गरीब को दिये हुये वचन को पूरा कर। नहीं तो इस बार बिच्छू नहीं, साँप भी गिरेंगे। यह शिवजी की महिमा है। मनुष्य को उसके गुण के अनुसार फल मिलता है। सावधान !"

तुरन्त बनवारीलाल अपने घर चला गया। उसने सोचा कि नये मकान में उसकी खैरियत नहीं है। अगले दिन उस गरीब को बुलाकर, जो कुछ गुज़रा था, साफ़-साफ़ कह दिया। उसने बताया-"यद्यपि मैंने वह मकान बनाया है, मगर उसमें रहना मेरे भाग्य में नहीं लिखा है। तू तो सौभाग्यशाली है। तू ही उसमें रह। किराया देने की ज़रूरत नहीं है!" बनवारीलाल ने उस गरीब से मकान में रहने की प्रार्थना की।

गरीब फिर से उस मकान में सुखपूर्वक सपरिवार रहने लगा। उसने आँगन में एक छोटा-सा शिवजी का मन्दिर भी बना लिया। उसमें शिवजी की आराधना करता हुआ, एकादशी व्रत रखता हुआ, वह ऐश्वर्य के साथ जीने लगा।

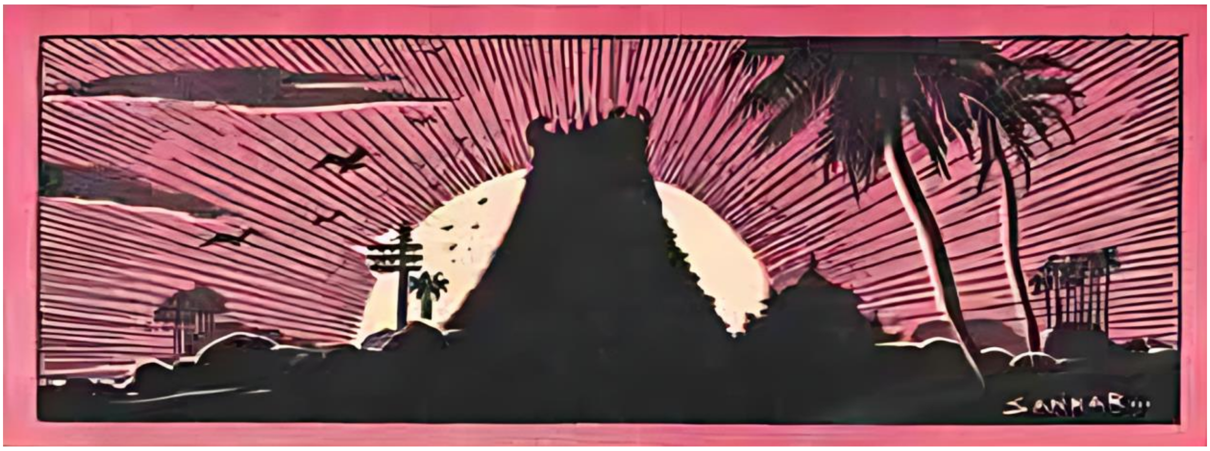

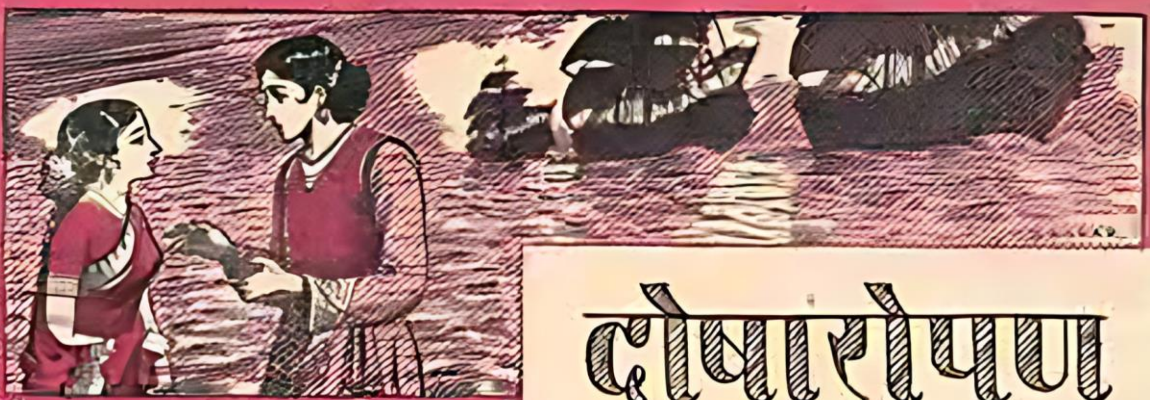

दोषारोपण

एक धनी बनिया था। उसका सुबुद्धि नाम का एक लड़का था। एक लड़की भी थी, जिसका नाम सुमित्रा था। मरते समय उसने अपने पुत्र को पास बुलाकर कहा-"बेटा! मेरी मृत्यु के बाद व्यापार अच्छी तरह चलाते रहना। तू और बहन प्रेम से रहना। बस, यही मेरी आखिरी इच्छा है। इसे अच्छी तरह निभाना।"

पिता की मृत्यु के बाद तीन नौकाओं में माल भरकर, सुबुद्धि व्यापार के लिये परदेश रवाना हुआ। उसने जाते समय बहन से कहा-"बहिन! मैं बहुत दिनों तक वापिस न आ पाऊँगा। मेरी अनुपस्थिति में धर्म का उल्लंघन मत करना। दूसरों से बातचीत मत करना।" न मालूम फिर कब मिलना हो, यह सोच सुबुद्धि ने अपना एक चित्र बहन को दिया और स्वयं बहन का एक चित्र लेकर, वह घर से निकल पड़ा। दो वर्ष बीत गये। तीसरा साल चल रहा था। सुबुद्धि नौकायें लेकर एक बन्दरगाह में पहुँचा। यहाँ लङ्गर डालकर, एक रत्न आभूषण लेकर, उस देश के राजा सुदर्शन को भेंट देने के लिये सुबुद्धि गया। उपहार भेंट कर सुबुद्धि ने सुदर्शन से प्रार्थना की कि आप अपने देश में व्यापार करने की मुझे कृपया अनुमति देकर अनुग्रहीत कीजिये।"

सुबुद्धि के उपहार को देखकर सुदर्शन बहुत आनन्दित हुआ। कभी भी किसी व्यापारी ने उसको उतने अमूल्य उपहार नहीं दिये थे। इसलिये उसने प्रसन्न हो सुबुद्धि को व्यापार करने की अनुमति दे दी। इसके अतिरिक्त वह सपरिवार नाव में रखे माल को देखने के लिये स्वयं गया। वह

बा. मो. खेडेकर

सुबुद्धि को प्रोत्साहित करना चाहता था। जब सुदर्शन नौका में माल का निरीक्षण कर रहा था, तब उसकी नज़र सुमित्रा के चित्र पर पड़ी।

"यह सुन्दरी कौन है?" सुदर्शन ने सुबुद्धि से पूछा।

"प्रभू। वह मेरी बहन है।"

"क्या सौन्दर्य के साथ उसमें चारित्र भी है?" राजा ने फिर पूछा।

"उसके चारित्र पर उँगली उठानेवाला कोई नहीं है।" सुबुद्धि ने गम्भीरता के साथ जवाब दिया।

"ऐसी बात है, तो मैं उसको अपनी मुख्य रानी बनाना चाहता हूँ।" सुदर्शन ने कहा।

सेनापति के मन में यह देख ईर्ष्या पैदा हुई।

"क्या आखिर यह वैश्य जाति की स्त्री हमारी रानी होगी? हमारी पत्नियाँ क्या उसकी हाजिरी बजायेंगी?" ईर्ष्यालु सेनापति ने मन ही मन यो सोचा। परन्तु बाहर उसने कहा-"प्रभू! मैं इस स्त्री को जानता हूँ। इसका चारित्र अच्छा नहीं है।"

यह बात सुनते ही राजा को सुबुद्धि पर गुस्सा आया।

"तू ने क्यों एक कुल्टा स्त्री को चारित्रवती कहा ? तेरा सिर कटवा दूँगा।" सुदर्शन ने सुबुद्धि से आग बबूला होते हुये कहा।

"प्रभू! आपके सेनापति ने झूठ कहा है। उससे कहिये कि वह अपनी बात को साबित करे। यह कह रहा है कि वह मेरी बहन को जानता है, इसलिये उससे कहिये कि जरा मेरी बहिन की अंगूठी तो ले आये। उसके शरीर पर तिल का चिन्ह कहाँ है, यह भी जरा मालूम कर आये।"

सुदर्शन को यह ठीक ही जँचा। उसने सेनापति से कहा-"अगर तुमने दो महीनों में उस स्त्री की अंगूठी लाकर न दी और यह न बताया कि उसके शरीर पर कहाँ तिल का चिन्ह है, में तुम्हारा सिर कटवा दूँगा।"

सेनापति उस देश को गया, जहाँ सुमित्रा रहा करती थी। वहाँ उसको एक बहुत ही गरीब स्त्री दिखाई दी। सेनापति ने उससे कहा-"माँ ! मुझे एक लड़की की अंगूठी चाहिये और यह भी मालूम करना है। कि उसके शरीर पर तिल का चिन्ह कहाँ है। क्या तू मेरा काम कर देगी? अगर तू मुझे बता सकी, तो मैं तुझे मुँह माँगा सोना दूँगा।"

धन के लोभ से वह लालची बुढ़िया सुमित्रा के घर गई। उससे इधर उधर की बातें कर, मालूम कर लिया कि उसकी पीठ पर दायीं ओर तिल का चिन्ह है। उसने जैसे तैसे उसकी अंगूठी भी चुराकर सेनापति को दे दी।

सेनापति तुरन्त अपने देश की ओर लौटा और सुदर्शन को अंगूठी दे दी और तिल के चिन्ह का रहस्य भी बता दिया।

चूँकि उसने सुमित्रा पर लगाये हुये दोष को साबित कर दिया था, राजा ने सुबुद्धि को मौत की सजा दी।

परन्तु सुबुद्धि ने एक इच्छा प्रकट की। "मैं परदेश में मरने से पहले एक बार अपनी बहन को देखना चाहता हूँ। उसको बुलाकर मुझे एक बार मिलने दीजिये। बाद में में खुशी-खुशी मौत की सजा भुगत लूँगा।"

सुदर्शन यह मान गया। सुबुद्धि ने बहन को एक चिट्ठी लिखकर सुदर्शन के दूतों द्वारा भेजा। भाई की आज्ञा की

परवाह न कर उस बुढ़िया से बातचीत करने के कारण ही उसका भाई जोखिम में है, यह सुमित्रा ने जान लिया। वह उससे मिलने के लिये चल पड़ी।

सुदर्शन के राज्य में पहुँचने के बाद उसने सीधे राजा के पास जाकर निर्भय हो पूछा-"प्रभू! यह कान का आभूषण देखिये। क्या यह कीमती है?"

सुदर्शन ने उस आभरण में लगे कीमती पत्थरों की परीक्षा करते हुये कहा-" यह जरूर अमूल्य है। पर यह मुझे क्यों दिखा रही हो?"

"आपके सेनापति ने इसके साथ का गहना चुरा लिया है। आप तो न्यायशील हैं। कृपया न्याय कीजिये।" सुमित्रा ने कहा। राजा ने सेनापति को बुलाकर उस स्त्री ने जो अभियोग लगाया था, उसे सुनाकर कहा-"सुना है, उस स्त्री के कान का गहना तुमने चुराया है। उसको तुरत इस वापिस कर दो।"

सेनापति हक्का बक्का रह गया। "वह कौन है, में नहीं जानता हूँ। न जिन्दगी में मैंने कभी उसका मुँह देखा है। बताइये, मैं भला उसके कान का गहना कैसे चुरा सकता हूँ।"

तुरन्त सुमित्रा ने राजा की ओर मुड़कर कहा-"मैं सुबुद्धि की बहन हूँ। जब सेनापति ने मुझे देखा तक नहीं हैं, तब आपने मेरे भाई को मौत की सजा क्यों दी?"

सुदर्शन सेनापति के दिये हुये धोखे को समझ गया। सुमित्रा की अक्लमन्दी भी उसको अच्छी लगी। उसने सुबुद्धि की जगह सेनापति को मौत के घाट उतरवा दिया। सुबुद्धि को जेल से रिहा कर दिया। सुमित्रा से विवाहकर वह बहुत काल तक सुखपूर्वक राज्य करता रहा।

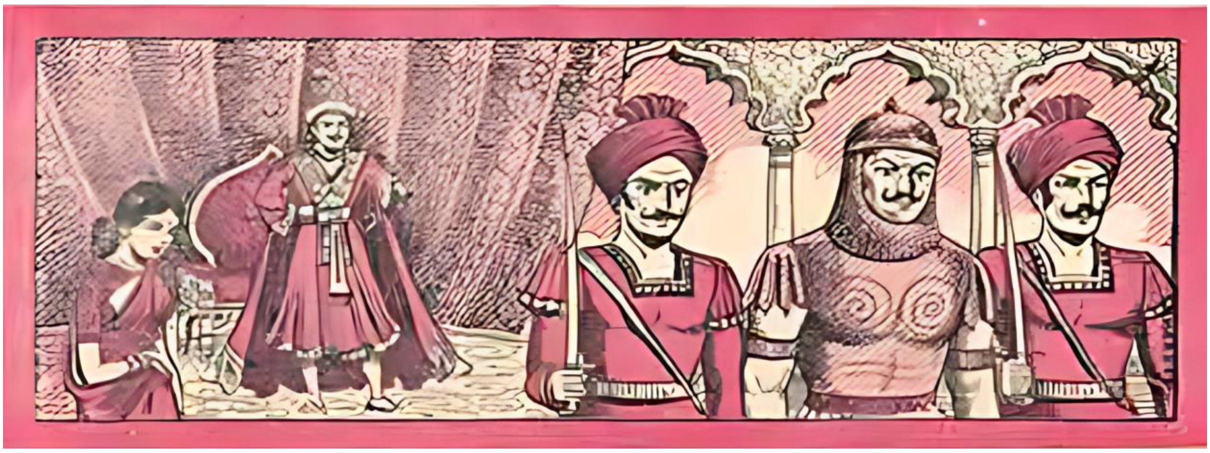

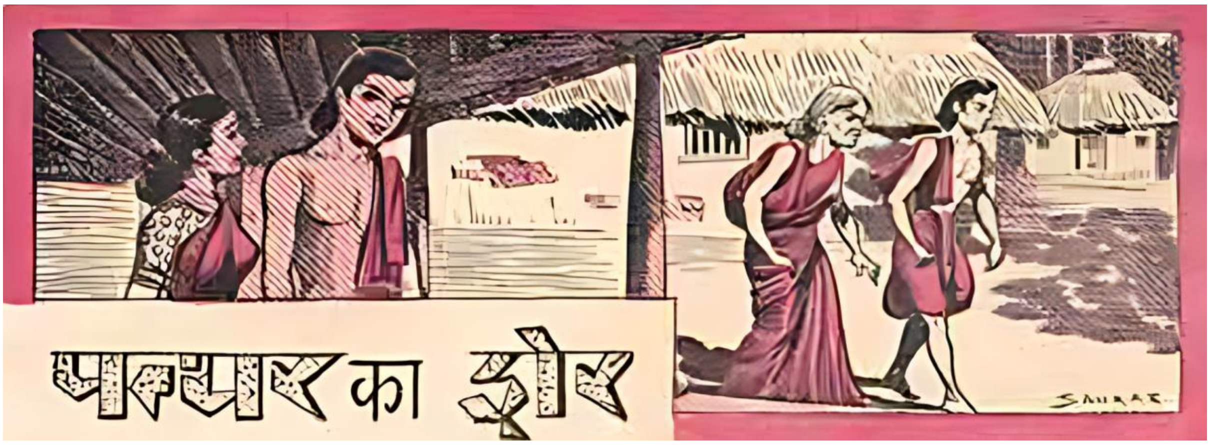

पत्थर का ढेर

त्रिविष्ट देश में दो भाई रहा करते थे। उनका पिता तो मर चुका था, परन्तु माँ जीवित थी। उन दोनों में बड़ा भाई चलता-पुरजा और स्वार्थी था। छोटा भाई बहुत अच्छा और सीधा-सादा था। बड़े माई की आमदनी पर ही परिवार का गुज़ारा हो रहा था। छोटा भाई, सिवाय जी-तोड़ मेहनत करने के कुछ नहीं जानता था।

कुछ दिनों बाद, बड़े भाई ने छोटे भाई से कहा-"क्यों भाई! मैं भला कब तक तेरा भरण-पोषण करता रहूँगा? तू कल ही यहाँ से जाकर जीने का कोई रास्ता निकाल ले।"

यह बात सुन छोटे भाई को बहुत रञ्ज हुआ। उसने घर से निकल जाने की ठानी। माता के पास जाकर उसने सारी बात कह कर उससे बिदा लेनी चाही। बड़े भाई की बात सुन, माँ को बेहद गुस्सा आया-"अगर वह तुझे खिला-पिला नहीं सकता है, तो भला मुझे क्या पूछेगा ? चल, मैं भी तेरे साथ चलूँगी।" वह भी छोटे लड़के के साथ निकल पड़ी।

अगले दिन सवेरे-सवेरे, चलते-चलते माँ बेटे एक पहाड़ के पास पहुँचे। उस पहाड़ की तराई में उन्हें एक खाली घर दिखाई दिया। उस घर से थोड़ी दूर पर एक कस्बा भी था। इस कारण उन दोनों ने वहीं धरना जमा कर रात गुज़ार दी।

अगले दिन छोटा लड़का कुल्हाड़ा लेकर जङ्गल में लकड़ियों काटने गया। साँझ को एक बड़ा लकड़ियों का गट्ठर कस्बे में बेच दिया और जो कुछ पैसे मिले, माँ के हाथ में दे दिये।

श्री म. र. गाँवकर

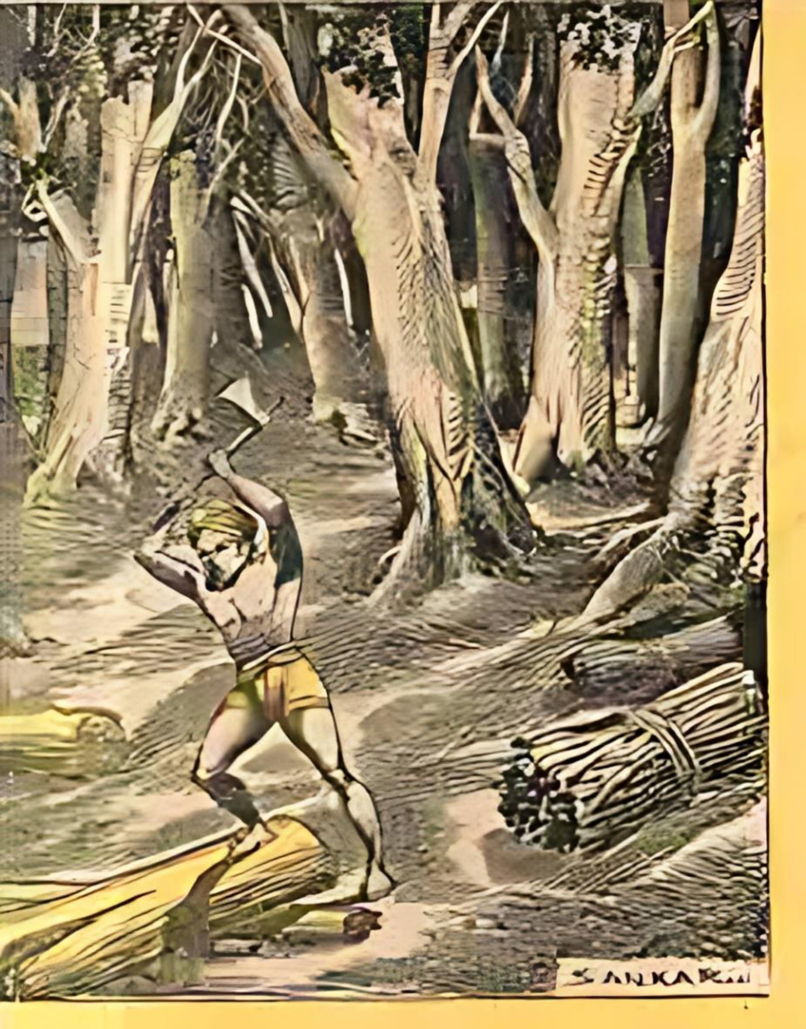

"माँ ! मैं रोज इसी तरह पैसे कमाऊँगा। मजे में हमारा गुजारा हो जायगा।" उसने माँ से कहा।

जब वह अगले दिन पहाड़ पर लकड़ियाँ फाट रहा था, तो उसको एक जगह एक पत्थर की मूर्ति दिखाई दी। उसका आकार शेर जैसा था। उसको देखकर वह लड़का यों सोचने लगा-

"इस पहाड़ का शायद यही आराध्य देवता है। इस देवता की कृपा से ही मुझे लकड़ियाँ और पैसे मिल जाते हैं। दीपाराधना कर इसको प्रणाम करूँगा।"

अगले दिन वह घर से दिये, तेल, बत्ती वगैरह लाया। पत्थर के शेर के सामने दीपाराधना कर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। उसने प्रार्थना की- "भगवन्! मुझे रोज कृपा करके अच्छी लकड़ियाँ दिल्वाइये। तुरन्त पत्थर के शेर ने मुख खोलकर पूछा- "तुम यहाँ क्या कर रहे हो ?" "भगवन्। मुझे मेरे भाई ने घर से निकाल दिया है। मैं पहाड़ पर लकड़ियाँ काट कर अपना और अपनी माँ का गुजारा कर रहा हूँ। आप कृपा करके देखिये कि मुझे किसी चीज़ की कमी न हो।" लड़के ने कहा।

"अच्छा! कल इसी समय एक बड़ा टोकरा लेकर आ। मैं तुझे मन चाहा धन दूँगा।" पत्थर के शेर ने कहा।

लड़के के आनन्द की सीमा न रही। उसने मूर्ति के सामने कई बार झुक झुक कर प्रणाम किया। काटी हुयी लकड़ियों को कस्बे में ले जाकर बेचा। जो पैसे मिले, उससे एक टोकरा खरीदा और अगले दिन ठीक समय पर टोकरा लेकर वहाँ पहुँच गया। भक्ति से मूर्ति को नमस्कार किया। सविनय कहा- "भगवन् ! मैं आया हूँ।"

"अच्छा, जैसा मैं कहूँ, वैसा करो। टोकरे को मेरे मुख के नीचे रखो। उसको सोने की मुहरों से भर दूँगा। मगर, खबरदार ! जब वह भर जाय, तो मुझे रुकने के लिये कह देना। अगर टोकरे में से एक मुहर भी नीचे गिरी, तो तेरा बुरा होगा।" शेर ने कहा।

पत्थर के शेर के कहने के अनुसार उसने टोकरा रख दिया। उसके मुख से मुहरों का फव्वारा फूट पड़ा, टोकरा भरने लगा। अभी टोकरा भरा भी न था कि लड़के ने कहा- "ठहरिये महाराज।" तुरन्त मुहरों का प्रवाह बन्द हो गया।

पत्थर के शेर को अपनी कृतज्ञता दिखाने के लिये लड़के ने उसके सामने हज़ार बार प्रणाम किया। कन्धे पर टोकरा रख, वह पहाड़ से उतरकर घर गया। उतना सारा सोना देखकर माँ पहले तो घबराई। पर लड़के ने सब कुछ सुनाने पर वह बहुत खुश हुई।

उस धन से उन्होंने जल्द कुछ जमीन और बैल वगैरह खरीद लिये। छोटा-सा एक घर बना लिया। खेती-बाड़ी कर सुख से जीवन निर्वाह करने लगे।

बड़े भाई को मालूम हो गया कि छोटे भाई की किस्मत चमक उठी है और वह माँ का पालन-पोषण कर रहा है। उसकी किस्मत कैसे अच्छी हुयी, यह जानने के लिये वह पत्नी के साथ छोटे भाई के घर आया। छोटे भाई ने भाभी और भाई की बहुत आवभगत की। उसने भाई को यह भी बता दिया कि उसको मुहरें कैसे मिली थीं।

उसकी पत्नी ने सोचा, जब इतनी आसानी से पैसा मिल रहा है, तो भला क्यों मौका चूका जाय। बड़े भाई ने उसी दिन कस्बे में जाकर, कई दुकानें देख, एक बड़ा

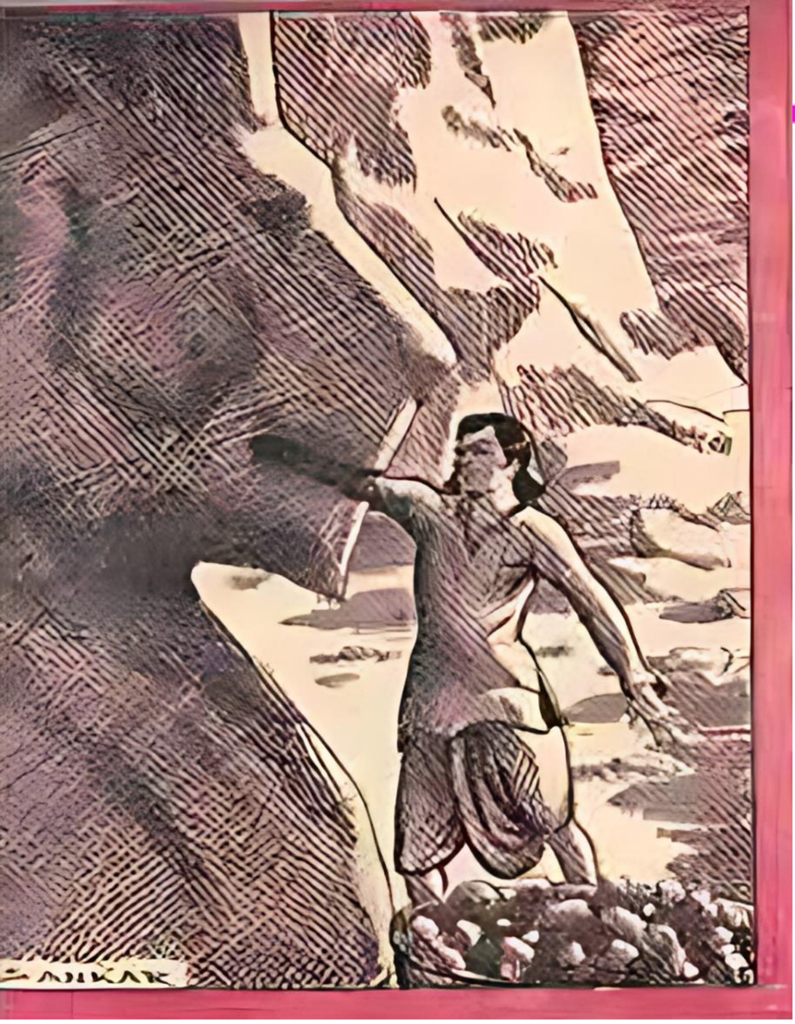

पीतल का बर्तन खरीदा। दो बड़े बड़े दीप स्तम्भ भी खरीदे। अगले दिन उन सबको लेकर शेर की मूर्ति के सामने दीपाराधना कर, साष्टाङ्ग प्रणाम कर उसने प्रार्थना की "भगवन् ! कृपा करो।"

"तुम कौन हो? क्या चाहते हो?" शेर ने पूछा।

"एक बार आपने मेरे भाई को सोने की मुहरें दी थी। मेरी प्रार्थना है कि मुझे भी उसी प्रकार कुछ दें।" उसने सविनय कहा।

"अच्छा! बर्तन मेरे मुँह के नीचे रखो, मैं उसको सोने से भर दूँगा। अगर बर्तन में से थोड़ा भी सोना बाहर निकला, तो तुम पर आफत आ जायगी। उसके भरते ही मुझे रुकने के लिये कह देना।" शेर ने कहा।

खुशी के मारे बड़े भाई के मुख से बात भी न निकली। काँपते काँपते हाथों से उसने बर्तन को शेर के मुख के नीचे रख दिया। मुहरों की धार गिरने लगी। अधिक मुहरें पाने के लिये, बड़ा भाई बर्तन हिला-हिलाकर जगह बनाता गया। यद्यपि बर्तन के मुख तक मुहरें भर गई थीं. परन्तु उसने शेर को रुकने के लिये नही कहा। सोचा होगा, जब अच्छा देर ऊपर हो जायगा, तब कह देंगे।

चूँकि मुहरें चिकनी थीं, इसलिये वह एक पर एक पड़ खिसकने लगीं। आखिर एक मुहर बर्तन में से गिर पड़ी। उसी समय शेर के मुख से गिरती मुहरों की धार बन्द हो गई।

"बेटा! एक बड़ी मुहर मेरे गले में फँस गई है। अपने हाथ से उसको जरा बाहर निकाल दो।" शेर ने कहा। बड़े भाई ने आतुरता से अपना हाथ शेर के मुख में रखा। उसका हाथ रखना था कि शेर का मुख बन्द हो गया। उसका हाथ मुख में फँस

गया। हाथ बाहर निकालने के लिये उसने लाख कोशिश की मगर कुछ फायदा न हुआ। वह रोया, चिल्लाया, परन्तु पत्थर के शेर का दिल न पिघला। इसके अलावा, बर्तन में पड़ी मुहरें पत्थर हो गईं। अन्धेरा होने पर भी पति को वापिस न आता देख बड़े भाई की पत्नी उसकी खाज मैं निकली। खोजती खोजती वह उस जगह पर पहुँची, जहाँ वह था। उसने जो कुछ गुज़रा था, पत्नी से कह दिया।

तब से रोज बड़े भाई को उसकी पत्नी वहाँ भोजन ले जाकर खिलाती। कोई कमाने वाला था नहीं, इसलिये जो कुछ जमीन-जायदाद थी, उसे बेच वाच कर गुजारा करना पड़ा।

महीनों बाद एक दिन पत्नी ने पति से कहा-"हमारी सम्पत्ति सब समाप्त हो गई है। कोई उधार भी नहीं देता। अब हमें दाने-दाने के लिये दर दर भटकना पड़ेगा।"

यह सुन पत्थर के शेर को बेहद हँसी आई। वह मुख खोल कर "अहाहा....!" कर अट्टहास करने लगा।

यह मौका पा, बड़े भाई ने अपना हाथ शेर के मुख में से खींच लिया। पैसा मिले या न मिले, जान तो बची! यह सोच कर वह सन्तुष्ट हुआ।

पति-पत्नी वहाँ से ठीक छोटे भाई के घर गये। जो कुछ गुज़रा था, उसको कह सुनाया।

"क्या बड़ों ने यूँही कहा है कि लालच बुरी बला है ! खैर, कोई बात नहीं। मैं पैसा देता हूँ। ज़मीन खरीदो और मेहनत करके जिओ।" छोटे भाई ने बड़े भाई को सलाह दी। तब से बड़ा भाई छोटे भाई की सलाह के अनुसार रहने लगा।

बहुत पहिले किसी जमीन्दारी गाँव में ज्वालाग्नि नाम का एक बड़ा शिल्पकार रहा करता था। उसके चार लड़के थे। उनके नाम थे....रामाग्नि, भरताग्नि, रूपाग्नि और कालाग्नि।

ज्वालाग्नि बूढ़ा हो चुका था। कमाई के दिनों में उसने खूब कमाया, परन्तु सारा का सारा परिवार के पालन पोषण में खर्च हो गया। पुत्र भी कोई कला सीख न पाये। पर उन सब ने सुनार का काम अच्छी तरह सीख लिया था। क्योंकि उनका पिता, परिश्रम करके खूब कमा रहा था, उन्होंने उस काम का भी अच्छा अभ्यास नहीं किया था।

ज्वालाग्नि काफी बूढ़ा हो चुका था। उसने सोचा, अगर बच्चों ने अब ही मेहनत कर काम न करना सीखा, तो आगे आगे उन्हें बहुत कष्ट उठाने पड़ेंगे।

एक बार रात को ज्वालाग्नि ने अपने चारों लड़कों को पास बुलाया।

"बेटो! मैं बूढा हो गया हूँ। ज्यादा दिन न जिऊँगा। और तुम कोई अच्छा हुनर नहीं सीख पाये हो। सुनार के काम से तो तुम्हें अधिक आमदनी होगी नहीं, फिर तुम आराम से कैसे रह सकोगे?" बूढ़े ने पूछा।

तब बड़े लड़के रामाग्नि ने कहा- "पिताजी! आप हमारे बारे में फ्रिक मत कीजिये। अगर हमने इसी काम में ही अक्लमन्दी दिखाई तो इससे भी काफ़ी आमदनी हो जायगी। अब से जो कोई मेरे पास गहने वगैरह बनाने के लिये सोना लायेगा, उसमें से एक चौथाई मेरा होगा और तीन चौथाई उसका।"

ज्वालाग्नि बड़े लड़के की चतुरता देख सन्तुष्ट हुआ। उसने सोचा, जैसे-तैसे वह

जीवन निर्वाह कर लेगा। तब उसने भरताग्नि से भी वही पूछा, जो रामाग्नि से पूछा था।भरताग्नि ने जवाब दिया- "पिताजी ! आप मेरे विषय में चिन्ता मत कीजिये। बस, कल से जो मेरे पास सोना आयेगा उसमें, से आधा मेरा और आधा देने वाले का।"

ज्वालाग्नि ने सन्तुष्ट होकर तीसरे लड़के रूपाग्नि से पूछा। रूपाग्नि ने कहा-"पिताजी! आपको क्यों फिक्र हो रहे है? कल से जो कोई मेरे पास सोना लायेगा, तीन चौथाई मेरा और एक चौथाई उसका होगा।" तब सबसे छोटे लड़के कालाग्नि से पिता ने पूछा। उसने हँसते हुये कहा- "आराम से वक्त काटिये। हमारे विषय में चिन्ता मत कीजिये। अगर आप को धन ही चाहिये, तो ढेर का ढेर आपके पैरों के सामने रख सकता हूँ। कल से जो कोई मेरे पास सोना लायेगा वह सारा का सारा मेरा ही होगा।"

ज्वालाग्नि यह जानकर कि उसके बेटे काम-काजी हैं, बड़ा प्रसन्न हुआ। मगर उसको सब से छोटे लड़के कालाग्नि की बात सुनकर आश्चर्य हुआ। उसे विश्वास भी नहीं हुआ।

यही सन्देह गाँव में पहरेदारों के साथ घूमते हुये गाँव के कोतवाल को भी हुआ। पहरेदार के भेष में कोतवाल ने खिड़की के पास खड़ा हो, पिता-पुत्रों की बातचीत सुन ली थी। उसने यह परखने की ठानी कि कालाग्नि अपने पिता को दिये हुये वचन को कैसा निभाता है !

सबेरे होते ही कोतवाल ने कालाग्नि को बुला भेजा। कालाग्नि उसके पास गया।

"कालाग्नि! सुना है, तुम एक अच्छे कारीगर हो। मैं विष्णु भगवान के लिये एक सोने का किरीट बनवाना चाहता हूँ।

कालाग्नि कोतवाल की आज्ञा लेकर अपने घर गया। उस रात को उसने नकली किरीट को चोरी चोरी ले जाकर तालाब में रख दिया। सवेरे होते ही वह कोतवाल के घर गया।

कोतवाल सोने का किरीट कालाग्नि के हाथ में रख, जुलूस के साथ तालाब गया। वहाँ कोतवाल की निगरानी में तालाब में उतर कर कालाग्नि किरीट को माँज माँज कर धोने लगा। मौका पाकर उसने सोने का किरीट कीचड़ में दबा दिया और नकली किरीट को बाहर निकाला।

पानी में उसकी चालाकी को कोई नहीं देख सका। नकली किरीट में और सोने के किरीट में रत्ती भर भी भेद नहीं था। कोतवाल ने शास्त्रोक्त विधि के अनुसार विष्णु भगवान को किरीट समर्पित कर दिया। कालाग्नि शाम को तालाब जाकर सोने का किरीट घर उठा लाया।

एक महीना गुज़र गया। कोतवाल को न जाने क्यों कालाग्नि की बात याद आई। वह सोचने लगा, क्यों आदमी फालतू डीङ्ग मारते हैं, जब कि वे काम नहीं कर पाते। बूढ़े पिता

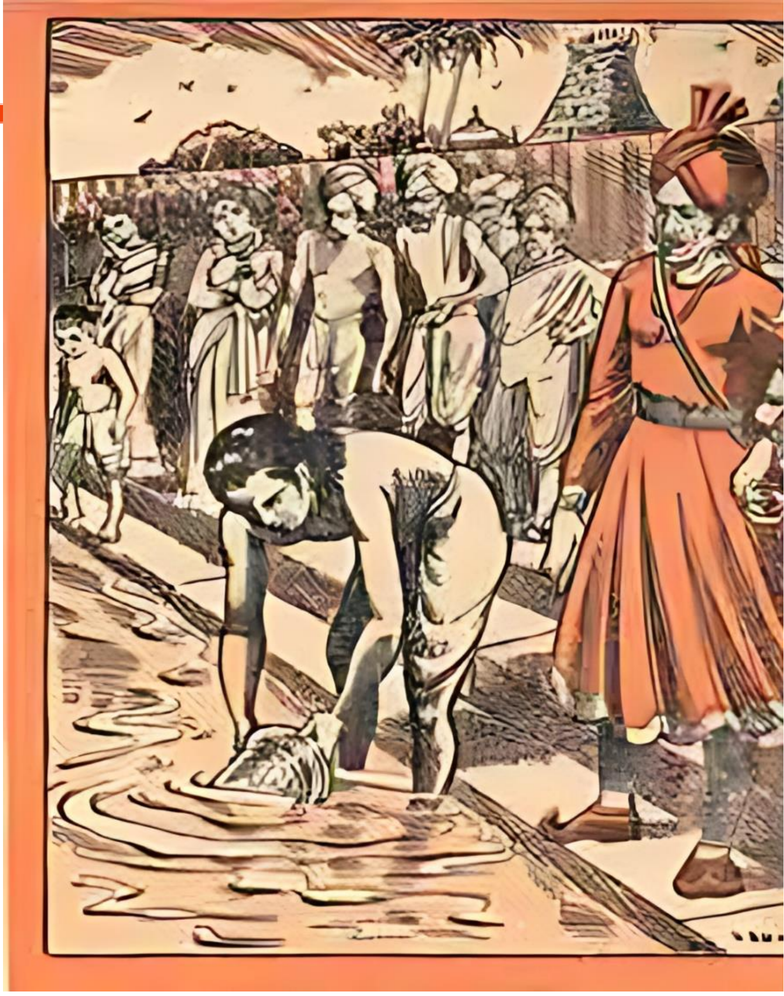

के सामने कालाग्नि को बढ़-चढ़ कर बातें नहीं करनी चाहिये थीं। उसने सोचा, अच्छा होगा, अगर कालाग्नि को बुलाकर खूब ड़ाँटा पटा जाय। कालाग्नि को बुला भेजा।

कालाग्नि कोतवाल के पास जाकर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। तब कोतवाल ने कहा- "कालाग्नि! मैंने तुझे न सम्मान करने के लिये ही बुलाया है, न दोषी बनाने के लिये ही। एक सलाह देने के लिये बुलवाया है। बड़ों के सामने डीङ्ग नहीं मारनी चाहिये। तुम्हारे देवता तुल्य

वह काम तुझे सौंपना चाहता हूँ। क्या तुम यह काम एक महीने में पूरा कर सकोगे?" कोतवाल ने पूछा।

"महाराज ! एक महीने की भी क्या जरूरत? मैं बीस दिन में ही किरीट बना दूँगा। सोना दिलवाइये।" कालाग्नि ने कहा।

कोतवाल को अचरज हुआ-"बीस दिन मैं ही किरीट बना दोगे। तब तो तुम जरूर अच्छे कारीगर हो। फिर क्या है, हमारे घर में ही काम शुरू कर दो। विष्णु भगवान के लिये जबतक किरीट बन कर पूरा न हो जाय, तब तक पास रहकर मुझे भी देखने की इच्छा हो रही है।"

उसी दिन कालाग्नि ने किरीट बनाने का काम प्रारम्भ किया। कोतवाल भी कुर्सी पर बैठ हजार आँखों से उसकी निगरानी करने लगा।

कालाग्नि दिन भर कोतवाल के घर सोने का किरीट बनाता और घर जा कर रात में एक नकली किरीट बनाता। वह आकार और कारीगरी में हूबहू सोने के किरीट जैसा ही था।

बीस दिन के खतम होते-होते काला कालाग्नि ने कोतवाल के घर सोने का किरीट बना दिया और घर में भी नकली किरीट तैयार कर लिया था। कोतवाल समझ रहा था कि उसकी नज़र बचा कर कालाग्नि सोना चुरा कर नहीं ले जा सका है।

"कालाग्नि, तुमने अपने कहने के अनुसार काम २० दिन में खतम कर दिया है। यह बहुत अच्छा है। कल नहीं परसों यह किरीट भगवान को अर्पित कर दूँगा। मगर पहिले किरोट को तालाब के पानी में शुद्ध करना होगा। इस लिये परसों सवेरे सवेरे तू यहाँ आ जाना।" कोतवाल ने कहा।

पिता के सामने करना तो पाप ही है। जो तूने उस रात अपने पिता से कहा था, मैने सुन लिया था। एक चौथाई नहीं, दो चौथाई नहीं, तीन चौथाई नहीं, तूने कहा था कि सारा का सारा सोना तू ही रख लेगा। परन्तु विष्णु भगवान के लिये जो तूने किरीट बनाया है, उसमें से एक रत्ती भर सोना भी तू न ले सका।"

कोतवाल की बात सुन कालाग्नि एक क्षण तो चुप रहा। फिर उसने सविनय कहा-"महाराज ! आप इस ग्राम के लिये राजा के समान हैं। मेरे प्राण आपके हाथों में हैं। अगर मैं यह कहूँ कि जो मैने अपने पिता के सामने कहा था, वह झूठ नहीं था, तो शायद आप मुझे दण्ड दें। मुझे क्षमा कीजिये।"

कालाग्नि के इस प्रकार उत्तर देने पर कोतवाल को सन्देह हुआ।

"मैं तुम्हें सजा नहीं दूँगा। सच कहो। मैं अपना वचन देता हूँ।" कोतवाल ने कहा। तब कालाग्नि ने कह सुनाया कि उसने किस तरह धोखा दिया था। कोतवाल ने सब सुन हँसते हुये कहा-"कालाग्नि! तुम सचमुच चालाक हो। विष्णु भगवान के लिये नकली किरीट की भेंट अच्छी नहीं। जो तेरे पास किरीट है, उसके भार का मैं सोना दूँगा। वह मुझे ला दो। तेरी चतुरता, अक्लमन्दी देखकर मुझे बहुत आनन्द हो रहा है। सौ मुहरें ईनाम दूँगा।"

कालाग्नि ने घर जाकर सोने का किरीट लाकर कोतवाल को दे दिया। किरीट के भार का सोना और सौ मुहरों का इनाम पा कालागि खुशी खुशी घर चला गया।

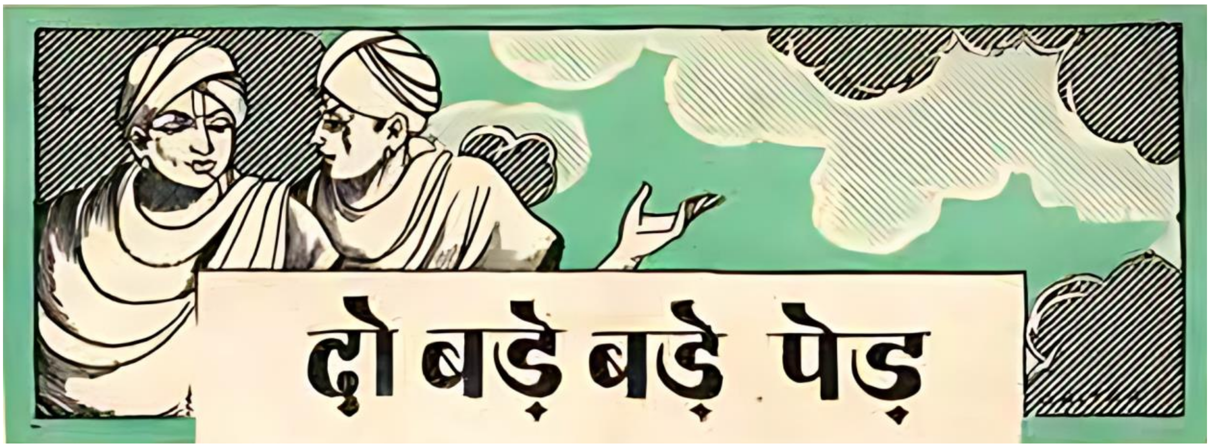

दो बड़े बड़े पेड़

नारद भूलोक का भ्रमण कर महाविष्णु के दर्शन के लिये वैकुण्ठ गये। महाविष्णु ने नारद को सादर निमन्त्रित ने कर पूछा-"नारद! लगता है, भूलोक का भ्रमण करके आ रहे हो। कहो, क्या खबर है? वहाँ लोग सन्तुष्ट, और सुखी हैं क्या ? धनियों में दान-धर्म और गरीबों में मक्ति, मर्यादा बढ़ रही हैं कि नहीं ?" इस पर नारद ने सिर हिलाकर मुस्कराते हुये कहा-"देव! मुझे नहीं मालूम मैं आपके प्रश्नों का उत्तर देने के लिये क्यों झिझक रहा हूँ। अच्छा हो, आप ही स्वयं भूलोक का एक बार सञ्चार कर आयें।" नारद के इस प्रकार उत्तर देने पर विष्णु को बहुत आश्चर्य हुआ। उसने अनुमान किया कि जरूर नारद के कहने में कुछ रहस्य है, इसीलिये ही वह मुझे मूलोक के सञ्चार के लिये प्रेरित कर रहा है।

विष्णु नारद को साथ लेकर भूलोक के सञ्चार के लिये निकल पड़े। दोनों यात्रियों का वेष धारण कर भूलोक में उतर पड़े।

दोनों ने जाते जाते एक बड़े शहर में पहुँच कर एक बड़े मकान के पास से गुजरे। मकान के दरवाजे बन्द थे। विष्णु और नारद दरवाजे के पास जाकर अन्दरवालों को बुलाया। पर अन्दर से कोई जवाब नहीं मिला।

तब दोनों एक और घर के पास गये। उस घर के दरवाजे खुले हुये थे। उन्होंने वहाँ जाकर पूछा-"हम यात्री हैं। भूख लग रही है क्या आप हमें अपना अतिथि बना सकेंगे?"

यह सुन घर का मालिक तिलमिला उठा। उसने कोई जवाब न दिया और झट दरवाजा बन्द कर दिया।

विष्णु को यह रूखा बर्ताव बिल्कुल पसन्द न आया। परन्तु नारद सिर एक ओर कर मन ही मन खूब हँस रहा था। इसी तरह वे फिर दो-चार घर और गये। "हम यात्री हैं। हम पर कृपा कीजिये।" उन्होंने आतिथ्य भिक्षा माँगी।

"तुम्हें आतिथ्य चाहिये ? मुट्ठी भर दाने भी नहीं देंगे, जाओ, हटो।" कई लोगों ने कहा।

"काम कर हम जैसे क्यों नहीं जीवन निर्वाह करते? भीख क्यों माँगते हो ?" और कईयों ने समझाया।

आखिर, विष्णु और नारद एक फूस की झोंपड़ी के पास गये।

दोनों ने झोंपड़ीवाले को पुकारा। उनकी पुकार सुन एक बूढ़े ने बाहर झाँक कर देखा। फिर हँसता हुआ कहने लगा-"आओ बेटो, आओ। आप तो कोई यात्री नजर आते हैं। हम गरीब हैं। मगर जो कुछ हमारा है, सो आपका भी है। हमारा आतिथ्य स्वीकार कीजिये।" बूढ़े ने

उनको निमन्त्रित किया। नारद और विष्णु उस बूढ़े के पीछे पीछे झोपड़ी के अन्दर गये। अन्दर एक बुढ़िया थी। वह उस बूढ़े की पत्नी थी। अतिथियों को देखते ही, उसने एक चटाई उनके लिये बिछा दी। "थके-माँदे नज़र आते हो। मैं अभी भोजन तैयार कर देती हूँ। बैठो।" बुढ़िया ने कहा।

बूढ़े ने कोने में रखे हण्डे हण्डियों में से खोज-खाज कर, थोड़ा बहुत चावल निकाल कर पत्नी को दिया। झोपड़ी के छत पर से, दो तीन तौरियाँ तोड़ लाया। तब अतिथियों के पास आकर कहा-"भोजन बनने में थोड़ी देर लगेगी। इस बीच में, थोड़ा बहुत फलाहार कीजिये। फलाहार से मेरा मतलब और कुछ नहीं- खीरों से और दूध से ही है। खीरे हमारे पिछवाड़े में लग ही रहे हैं।"

उसने खीरों के दो टुकड़े कर एक विष्णु को दिया, एक और नारद को हण्डियों में से दूध निकाल, दो कटोरों में भर उनके सामने रख दिया।

विष्णु और नारद ने उनकी अतिथि सेवा की बहुत प्रशंसा की।

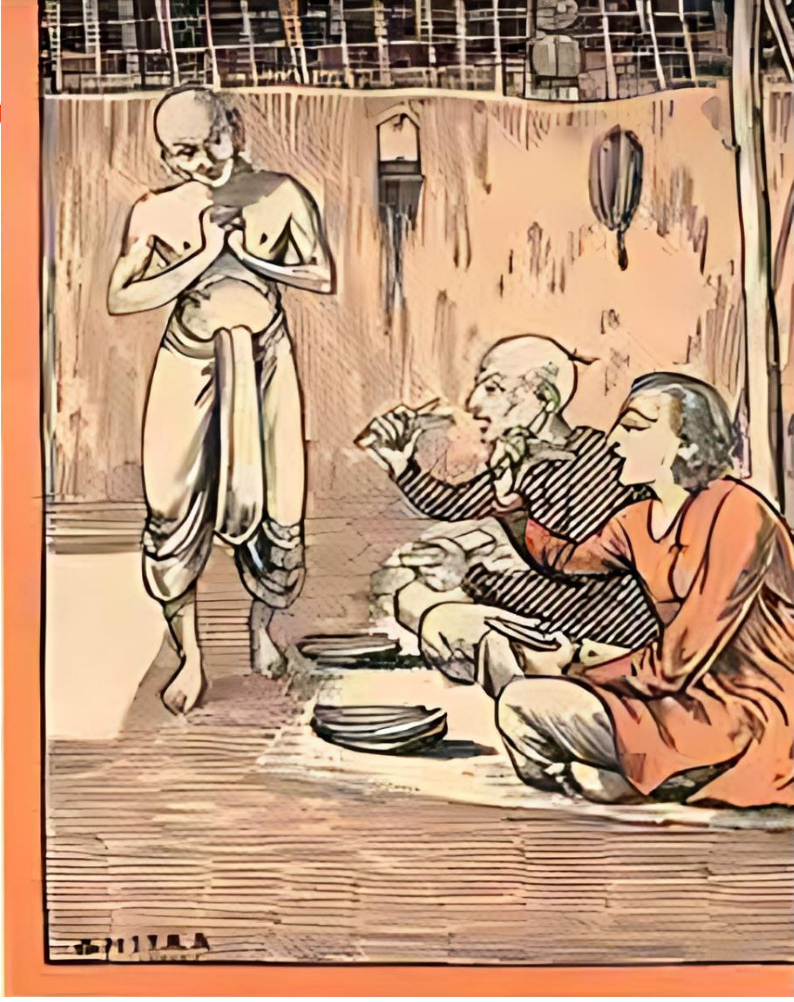

"दादा! क्या आपके बाल-बच्चे नहीं हैं? इस बुढ़ापे में आपकी सेवा शुश्रूषा करने के लिये क्या कोई बन्धु या सम्बन्धी नहीं हैं ?" विष्णु ने पूछा।
यह सुन बूढ़े ने मुस्कराते हुये कहा-"हमारे कोई बच्चे नहीं हैं। बन्धुओं के बारे में तो कहने की ही ज़रूरत नहीं। इस संसार में, हम दोनों को छोड़ कर, हमें अपना कहनेवाला कोई नहीं हैं। बुढ़ापा, जैसे तैसे काट रहे हैं।"

तब तक विष्णु ने कसोरे में से दूध पी कर नीचे रखा। परन्तु वह पहले की तरह भरा हुआ था। नारद भी खीरे

का टुकड़ा, आधा खाकर, हाथ में रखे हुये था। उसका दिया हुआ खीरे का टुकड़ा ठीक वैसा का वैसा ही था।

बूढ़े को यह देख कर बहुत आश्चर्य हुआ। उसने सोचा कि या तो ये कोई देवता हैं, नहीं तो कोई महापुरुष। उसने पत्नी के पास जाकर कहा- "देखा! हमारे घर जो अतिथि आये हैं, वे मामूली आदमी नहीं हैं।" उसने सारी बात बुढ़िया से भी कह दी।

फिर क्या था, उस बुढ़िया के आश्चर्य और आनन्द की सीमा न रही। उसने हाथ जोड़ कर अतिथियों के पास आकर कहा-"बेटो ! आप कौन हैं, मुझ जैसी अज्ञानी बुढ़िया पता नहीं लगा सकती। पर मैं इतना जरूर जान गई हैं कि आप कोई महापुरुष हैं। आप हमारे गरीब घर को पवित्र करने आये हैं। अगर अनजाने में हमसे कोई गलती हो गई हो, तो हमें क्षमा करें।"

तब विष्णु ने हँस कर कहा-"दादी। आपका आतिथ्य पा कर हमें बहुत प्रसन्नता हो रही है। बाल बच्चे और निकट सम्बन्धी हो न हों, कम से कम रुपया हो, तो आप दोनों सुख से रह सकते हैं। आप दोनों हमारे साथ झोपड़ी के बाहर आइये।"

विष्णु और नारद झोंपड़ी के बाहर आये। उनके पीछे पीछे बूढ़ा, और बुढ़िया भी आये। उनको एक ऐसा दृश्य दिखाई दिया, जिसके कारण उनको भय भी लगा और आश्चर्य भी। जहाँ तक नज़र जाती थी, वहाँ तक सपाट मैदान ही मैदान दीखता था।

"महाशय ! यह क्या आश्चर्य है? यहाँ जो मकान, पेड़ पौधे आदि, थे, वे क्या हुये ?" बूढ़े ने पूछा। तब विष्णु ने कहा-

"वे सब धराशायी कर दिये गये हैं। उन घरों का होना न होना बराबर है, जिनमें थके माँदे यात्रियों को आतिथ्य तो अलग पुकारने पर दरवाजा भी नहीं खोलते है, प्यास मिटाने के लिये पानी भी नहीं देते हैं। अब बताओ तुम क्या चाहते हो?"

"हम बूढ़े हो गये हैं। हमारी इच्छा बस एक ही बाकी रह गई है। वह यह है कि जब मरें तो हम दोनों एक ही साथ मरें। तब तक परमात्मा की पूजा करने के हिये यहाँ कोई मन्दिर हो, तो हमारी बची खुची जिन्दगी आराम से कट जायगी।"

तुरन्त मैदान में एक सुन्दर मन्दिर तैयार हो गया। और फूस की झोपड़ी की जगह एक भव्य भवन बन गया। तब विष्णु ने उन्हें यो आशीर्वाद दिया-"तुम्हीं सचमुच मनुष्य हो। तुम जब तक जिओगे, सुख से जिओगे। मृत्यु के बाद तुम इस मन्दिर के सामने दो वट के वृक्षों के रूप में पैदा होगे।" तब नारद के साथ विष्णु अदृश्य हो गये।

वह दम्पति, विष्णु के दिये हुये सम्पति का दान-धर्मादि में उपयोग करते हुये मन्दिर में पुजारी बन कर काफी दिन जीवित रहे। मरने के बाद भी, वे मन्दिर के सामने दो बड़े-बड़े वट के पेड़ों के रूप में रहने लगे।

उस वृद्ध दम्पति की भक्ति, श्रद्धा, सदाचार को लोगों ने भी पहिचाना। लोगों को यह भी मालूम हो गया कि उस मन्दिर को विष्णु ने साक्षात् स्वयं ही बनाया था। तब से वह प्रदेश एक पुण्य-क्षेत्र हो गया, और यात्रियों का ताँता लगा रहता।

CHANDAMAMA (Hindi) DECEMBER 1954 Regd. No. M. 5452

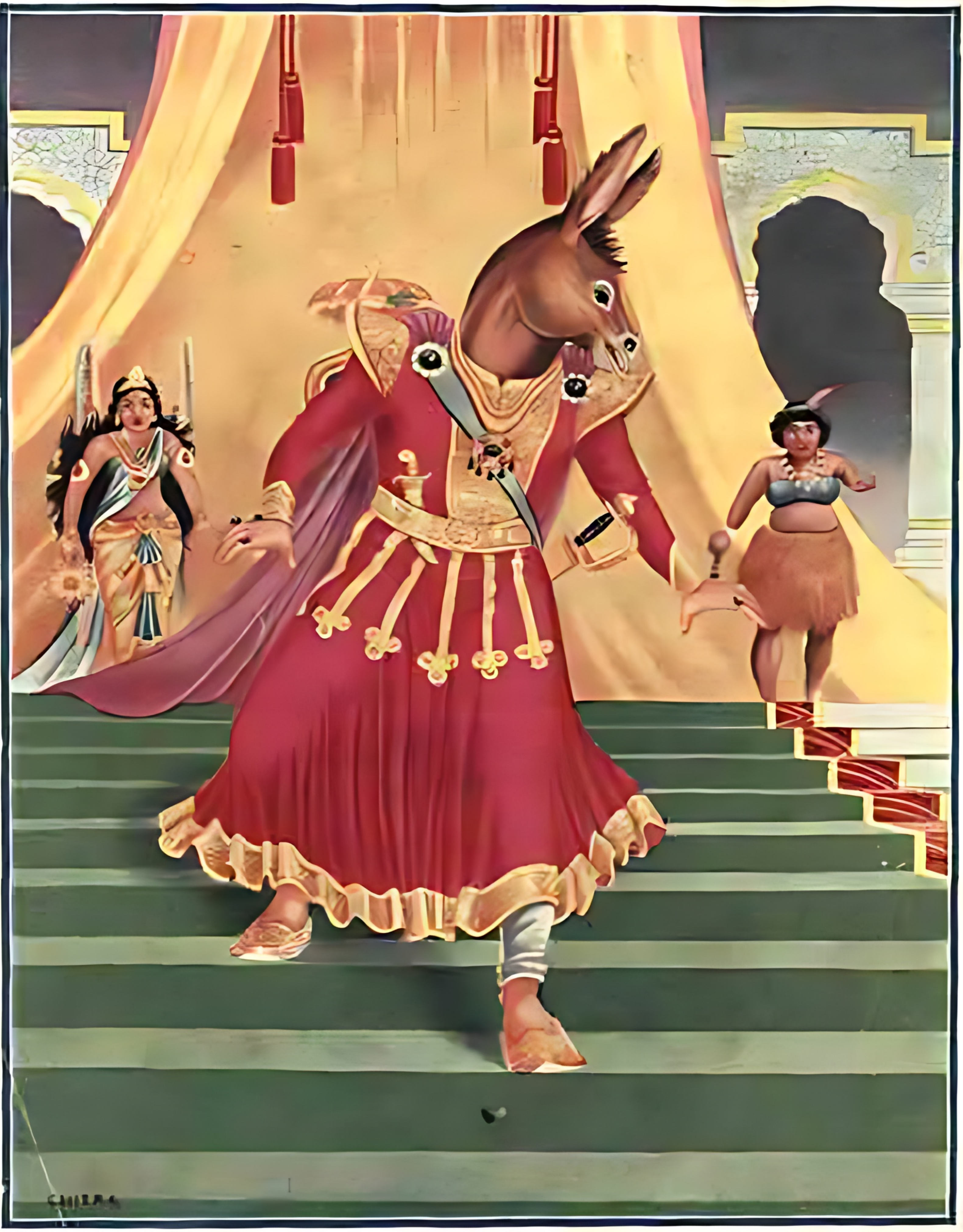

रङ्गीन चित्र-कथा, चित्र – १